1950

आलापपद्धति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवराज जैन ग्रंथमाला हिंदी विभाग पुष्प ४७ वे

श्रीमद्देवसेनाचार्य विरचिता

आलापपद्धति

अपर नाम

द्रव्यानुयोग प्रवेशिका

ब्र. जीवराज दोशी
अनुवादक

श्री. पं भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री
बांदरी (सागर म प्र.)

वीरसंवत २५१६ इ. स. १९८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक
श्रीमान् शेठ अरविंद रावजी

अध्यक्ष
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
संतोष भवन फलटण गल्ली सोलापूर

卐

ग्रंथमाला संपादक
श्री. पं. नरेन्द्रकुमार भिसीकर शास्त्री सोलापूर
श्री. डॉ. पं. देवेन्द्रकुमार शास्त्री नीमच

卐

प्रथमावृत्ती २००० प्रति
इ. स. १९८९

卐

मूल्य ७ रुपये

卐

मुद्रक
मुद्रण सम्राट प्रेस सोलापूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथमाला परिचय

सोलापूर निवासी स्व. ब्र. जीवराज गौतमचंद दोशी कई वर्षोंसे उदासीन होकर धर्मकार्य मे अपनी वृत्ति लगा रहे थें। सन् १९४० मे उनकी प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्तिका उपयोग विशेष रूपसे धर्म और समाजकी उन्नत्तिके कार्य में करे। तदनुसार उन्होंने समस्त देशका परिभ्रमण कर जैन विद्वानोंसे साक्षात् और लिखित रूपसे सम्मतियाँ इस बातकी संग्रह कि, कौनसे कार्य में संपत्तिका उपयोग किया जाय। स्फुट मतसचय कर लेनेके पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्मकालमें ब्रह्मचारीजीने सिद्धक्षेत्र गजपंथ (नाशिक) के शीतल वातावरण में विद्वानोंकी समाज एकत्रित की और ऊहापोहपूर्वक निर्णय के लिये उक्त विषय प्रस्तुत किया।

विद्वत् सम्मेलनके फलस्वरूप ब्रह्मचारीजीनें जैन संस्कृति तथा जैन साहित्यके समस्त अंगोके संरक्षण, उद्धार और प्रचारके हेतु, "जैन संस्कृति संरक्षक संघ" नामक संस्थाकी स्थापना की। उसके लिये रु. ३०,००० के दानकी घोषणा कर दी। उनकी परिग्रह निवृत्ति बढती गई। सन १९४४ मे उन्होंने लगभग दो लाख की अपनी संपत्ति संघको ट्रस्ट रूपसे अर्पण की। इसी संघके अंतर्गत "जीवराज जैन ग्रंथमाला" द्वारा प्राचीन प्राकृत–संस्कृत–हिंदी तथा मराठी पुस्तकोंका प्रकाशन हो रहा हैं।

आजतक इस ग्रंथमालासे हिंदी विभागमें ४६, कन्नडमें ३, धवलामें ९, तथा मराठीमें ८१ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है।

प्रस्तुत पुस्तक हिंदी विभागका ४७ वा पुष्प हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय निवेदन

सदरहू आलाप पद्धति नामक पुस्तक न्यायशास्त्रका मूल प्रारंभ प्रवेशिका ग्रंथ हैं। आजकल मुमुक्षु समाजमें न्याय शास्त्रोंका पठन पाठन करनेकी अभिरुचि बढती जा रही है। जैन आगममें प्रवेश करनेके लिये प्रथम जीवादि पदार्थोंका द्रव्य-गुण-पर्याय-प्रमाण नय इनका प्राथमिक ज्ञान होना नितांत आवश्यक है।

इस ग्रंथका हिंदी अनुवाद श्री. पं. भुवनेंद्रकुमार शास्त्री (बांदरी निवासी) इन्होने तयार कर इसका प्रकाशन तथा प्रचार करनेके लिये आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया है। इसलिये यह संस्था उनकी सदैव ऋणी है। तथा इस ग्रंथका मुद्रण कार्य मुद्रण सम्राट प्रेस सोलापूर के संचालक इन्होने अल्पकालमें सुचारु रुपसे संपन्न किया इसलिये यह संस्था उनकी आभारी है।

अंतमें इस ग्रंथका पठन पाठन कर मुमुक्षु जीव आत्मलाभ करे।

इस पवित्र भावनाके साथ-

भवदीय

रतनचंद शहा

मंत्री जीवराज जैन ग्रंथमाला

सोलापूर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

भगवान महावीरने संसार के दुःखोसे पूर्णतया परिमुक्त होनेके लिये भव्यजीवोंके लिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र रूप मोक्ष मार्ग को मुख्यरूपसे उपदिष्ट किया है। मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है। सम्यग्दर्शनसे विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि साततत्वोंका तथा नवपदार्थोंका यथार्थ श्रद्धान होता है और सम्यग्ज्ञानसे संशय विपर्यय और अनध्यवसाय दोषोंसे रहित यथातथ्य (जो जैसा है वैसा) छहद्रव्यादिक और अनेक गुणपर्यायादिका ज्ञान होता है। इस ज्ञान के विना जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छहद्रव्योंमें एवं जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन साततत्वोंमे ज्ञेय, हेय, और उपादेय का विवेक नहीं हो सकता और इस विवेक के विना मोक्ष मार्गका कारण भेद-विज्ञान नही हो सकता है।

जीवादि छहद्रव्योंमें 'स्व' का जीव उपादेय, मुझको छोडकर शेष जीव व पुद्गलादि पांच द्रव्य ज्ञेय है। इसी प्रकार जीवादि सात तत्त्वोंमें जीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये उपादेय, आश्रव बन्ध हेय और अजीव तत्व ज्ञेय हैं। यदि इस प्रकार का भेदज्ञान नहीं हुआ जो मोक्षमार्गमें किसे उपादेय मान कर स्वीकार करोगे किसे हेय जान कर छोडेंगे और किसे ज्ञेय जानकर उसके प्रति माध्यस्थ भाव रखोगे। यही भेदविज्ञान मोक्ष मार्ग का कारण हैं, इसी अभिप्राय को लेकर आचार्य अमृतचंद्रने समयसार कलश में स्पष्ट निरूपित किया है कि 'आजतक जितने जीव सिद्ध हुए हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध हो रहे है और भविष्य में होगे वे सब भेद विज्ञान के बल पर ही हो रहे हैं और जितने जीव संसार भटक रहे है वे इसी के अभाव में भटक रहे हैं।[1]

मोक्षमार्ग की प्राप्तिकी सामग्री या कारण कलाप छहद्रव्य, नव पदार्थ सात तत्त्वो आदि का यथार्थ बोध प्रमाण नय और निक्षेपोंसे होता है।

वस्तुके समस्त अंशोंको जानने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण द्वारा समस्त वस्तु अंशोंका निर्णय किया जाता है और जाना जाता है। जीवादि छह द्रव्य प्रमाण विषय प्रमेय हैं। प्रमाण द्वारा गृहीत वस्तुके एक अंशको ग्रहण करनेवाले या जाननेवाले ज्ञान को नय कहते हैं। नय के द्वारा वस्तुतत्त्वके एक अंश का निर्णय किया जाता हैं या सम्यक् रूपसे जाना जाता हैं अर्थात् प्रमाण के द्वारा वस्तु के सब अशो को ग्रहण करके ज्ञानी पुरुष अपने प्रयोजनके अनुसार उसमें से किसी एक अंश की मुख्यतासे कथन करता है वह नय है।[2] ये सब श्रुत ज्ञान के ही भेद है इसलिये श्रुतके विकल्पोकोनय कहा है।[3] अथवा ज्ञाताके अभिप्राय को नय कहा हैं।[4] कहा भी है कि "जो वस्तु को नाना

---

१. भेदविज्ञानत; सिद्धा: सिद्धा ये किल केचन।

२. तस्यैवाभावतो बद्धा ये किल केचन ॥ स. क १३१ प्रमणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नय:

३. श्रुत विकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नय:। (आलापपद्धति सूत्र १६०)

४. नाना स्वभावेभ्य: व्यावृत्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीतिनय: ॥ (वही सूत्र १८०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभावोसे हटाकर एक स्वभावमें स्थापित करता हैं वह नय हैं अर्थात् अनेक गुण पर्यायात्मक द्रव्यको एक धर्मकी मुख्यतासे निश्चय करनेवाला नय है।

मोक्ष मार्ग की साधना के लिये प्रमाण नय का सम्यक् बोध होना अत्यावश्यक हैं। इसी कारणसे आचार्य गृद्धपिच्छने तत्त्वार्थ सूत्र में "प्रमाण और नयोसे सम्यकदर्शन व जीवादिपदार्थोका अधिगम होता है।[1] ऐसा मुख्यरूपसे निर्दिष्ट किया है। नय ज्ञान विना वस्तु के स्वरूप का यथार्थ बोध न होनेसे साधक का जीवन एकांगी निर्णय होनेसे सदा उलझन भरा बना रहता हैं और मिथ्यात्व न टूटनेसे विवाद की आशंका बनी रहती हैं--

१. जीवनमें यदि व्यवहार नय के आश्रय की मुख्यता बनी रहती है सो बाहिरी क्रियाकाण्ड वेष तथा परवस्तुके त्यागादिक को धर्म मानकर आत्मा के स्वरूप की ओर लक्ष न होनेसे यथार्थ सुखसे वंचित रहता हैं क्योंकि जीवोंके जो अध्यवसान होता है वह वस्तुको अवलंबन कर होता हैं तथापि वस्तुसे बन्ध नही होता हैं अध्यवसानसे ही बन्ध होता हैं। अध्यवसानही बन्ध का कारण है बाह्य वस्तु नही, क्योंकि बन्धका कारण जो अध्यवसान हैं उसके कारणत्वसेही बाह्य वस्तु की चरितार्थता हैं। अध्यवसान का निषेध करने के लिये बाह्य वस्तु का निषेध किया जाता हैं। अध्यावसान को बाह्य वस्तु आश्रय भूत है; बाह्य वस्तुका आश्रय किये बिना अध्यवसान उत्पन्न नही होता है।[2] इस प्रकार बन्ध के

---

१. प्रमाण नयैरधिगमः तत्वार्थ सूत्र। ६।

२ बहत्थं पडुच्च ज पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं। णय वत्थुदोदि बंधो अज्झवसाणेण बधोत्थि ॥ समय सारगाथा (तथा उसकी टीका) २६५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण अपने अध्यवसानरूप रागादिक भावो के त्यागनेकी ओर तो लक्ष न हो और जो बाह्य वस्तु त्याग को धर्म माने उसीमे संतुष्ठ बना रहे उसके जीवन में मात्र व्यवहार नय की मुख्यता होनेसे निश्चय रूप स्वरूप की प्राप्ति करानेवाला स्वानुभव प्राप्त होना असंभव हो, ऐसे जीव को आगम में व्यवहाराभासी मिथ्यादृष्टि कहा है।

२) इसी प्रकार कोई महानुभाव निश्चय नय की मुख्यता करके बाह्य वस्तु का त्याग और अपने परिणामों के निमित्त नैमित्तिक संबंध का ज्ञान न होनेसे व्यवहाराश्रित व्रत क्रिया उपवासादि क्रियाओंको छोडकर अपनें को सिद्ध समान शुद्धमानकर स्वेच्छाचारी हो जाते है वे भी चरणानुयोग पद्धतिका ज्ञान होनेसे बाह्यत्याग तप आदि क्रियाओं और रागादिक के अभाव का अन्वय होनें पर भी इन को निरर्थक मान कर इन्हे न पालन करते हुए धर्मानुकूल क्रियाओंके बिना स्वच्छन्द और निरुद्यमी होकर मिथ्यादृष्टि ही बनें रहते हैं और बन्ध के कारण अपने रागादि परिणामों की ओर ध्यान न होनेसे वे संसार के पात्र होते हैं। ऐसे जीवों को आगम में निश्चयाभासी कहा है। आ. अमृत चन्द्र स्वामी कहते हैं कि ऊपर कहे हुए व्यवहाराभासी और ये निश्चयाभासी दोनों संसार मे डुबे हैं।[1]

३) इसी प्रकार कोई सज्जन उपचरित असद्भूतनय को मुख्यता करके उपादान को अनदेखाकर निमित्ताधीन दृष्टिसे

---

१. मग्नाः कर्म नयावलंबन परा ज्ञानं न जानन्ति ये। मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्द मंदोद्यमाः। समयसार कलश। १११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निमित्त का आश्रयही सब कुछ मानते हुए उसीसे अपना हित साधना चाहते हैं उनकी भी और लक्ष्यन होनेसे विपरीत मान्यता टूटती नही है। कार्य तो उपादान से ही होता है कार्य होने के स्वकाल में निमित्त की उपस्थिति अवश्य होती है ऐसी उपादान और निमित्त को काल प्रत्यासत्ति है। निमित्ताधीन दृष्टि हटाने के लिये ही निमित्त का ज्ञान कराया जाता है। क्योंकि सदा निमित्त पर होता है और वह अनुरूप उपादान के अनुकूल ही होता है। ऐसा उपादान निमित्त का यथार्थ ज्ञान न होने से निमित्त मात्रसे कार्य मानने वाले निमित्तवादी भी संसार में दुःख के ही भाजन होते हैं।

४) कोई मेधावी सज्जन व्यवहार और निश्चय इन दोनो नयोंके आश्रयसे ज्ञान और चारित्र की आराधना करना चाहते है। वे ऐसा मानते है कि सिद्ध समान आत्माका अनुभव करना। निश्चय है और शील संयमादिका पालन करना व्यवहार है इस प्रकार निश्चय व्यवहार दो रूप मोक्ष मान कर निश्चय व्यवहार रूप दोनो का साधन करते हुए मिथ्यादृष्टिही बने रहते है; क्योंकि किसी अन्य द्रव्यभावका नाम निश्चय और किसी अन्य का नाम व्यवहार नहीं हैं। एक ही द्रव्य के भाव को उस रूपसे निरूपित करना निश्चय नय है और उपचारसे उस द्रव्यके भावको अन्य द्रव्य के भावरूप निरूपित करना व्यवहार नय है। जैसे मिट्टीका घडा है उसे मिट्टीसे बना हुआ होनेके कारण मिट्टीका घडा निरूपित करना निश्चय नय है और घी रखा जाने के कारण उपचारसे उसे घी का घडा कहना व्यवहार नय हैं। इस दृष्टिरूप ज्ञानके अंश नय की अपेक्षा न समझकर जो वस्तु को ही निश्चय और व्यवहार रूप मानकर अन्यथा प्रवृत्ति करते है ये भी मिथ्याबुद्धिके कारण मिथ्यादृष्टि ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी आधार को लेकर भट्टारक देव सेनने अपने "श्रुतभवन दीपक नय चक्र" में लिखा हैं कि निश्चय के अविरोधी व्यवहार का तथा सम्यक व्यवहारसे सिद्ध निश्चय का परमार्थ पना स्वीकार किया गया है। वास्तवमें परमार्थ के विषयमें विमूढ (रहित) एकान्त व्यवहारी, व्यवहार के विषयमें विमूढ एकान्त निश्चय वादी, निश्चय व्यवहार दोनो के विषय में विमूढ एकान्त उभयवादी तथा निश्चय व्यवहार अनुभय के विषयमें विमूढ अनुभयवादी इस सभी के मोह (मिथ्या अभिप्राय) को निराकरण करनेके लिये निश्चय व्यवहारसे आलिंगित वस्तु का निर्णय करना आवश्यक है। इसी प्रकार परस्पर अविनाभावीपनेसे कथंचित् भेदरूप निश्चय व्यवहार की सहज (अनाकुल) सिद्धि होती है, अन्यथा इनका आभास हो जावेगा; अतः (निश्चय सापेक्ष) व्यवहार की प्रसिद्धिसेही निश्चय की प्रसिद्धि हो सकती हैं अन्यथा नहीं।[1]

इस प्रसंगमें यहां चार प्रकारके एकान्त मिथ्यादृष्टियोंका प्रकार निरूपित किया है– १) व्यवहाराभासी २) निश्चयाभासी ३) उभयाभासी और ३) अनुभयाभासी। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि हो सकते हैं। इन्ही

---

१. तद्यथा निश्चयाविरोधेन व्यवहारस्य सम्यग्व्यवहारेण सिद्धस्य निश्चयस्यच परमार्थत्व दिति। परमार्थ मूढानां व्यवहारिणां, व्यवहार मूढानां निश्चयवादिनां, उभयमूढाना मुभयवादिनां, अनुभय मूढाना मनुभयवादि निरासार्थं निश्चय व्यवहाराभ्यामालिंगितं कृत्वावस्तु निर्णय। हि:कथंचित् भेदः परस्परा विना भावत्वेन निश्चयव्यवहारयोरनाकुला सिद्धिः। अन्यथा भास एव स्यात्। तस्मात् व्यवहार प्रसिदध्यैव निश्चय प्रसिद्धि र्नान्यथेति। श्रुतभवन दीपक नयचक्र पृ. ८१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या मान्यताओंके कारण धर्म और समाजके क्षेत्रमें पंन्थ दल गुट या वाद बनते हैं और पनपते है।

इन सब मिथ्या मान्यताओंका निराकरण करनेके लिये मोक्षमार्ग में यथार्थ कारण भूत द्रव्य उनके गुण स्वभाव पर्यायोंका तथा लक्षण प्रमाण नय निक्षेपादि का ज्ञान करानेके लिये आचार्य देवसेनने इस 'आलाप पद्धति' ग्रन्थ की रचनाकी हैं। इस ग्रन्थ के आरम्भमेंही मंगला चरण करते हुए प्रतिज्ञा वाक्य रूपमें वे स्वयं लिखते हैं कि भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार करके गुणोंका स्वभावों का उसी प्रकार पर्यायोंका वर्णन विशेष रूपसे विस्तार पूर्वक करूंगा। साथ आलाप पद्धति बचन रचना (बातचीत) की परिपाटीके अनुसार नय चक्र ग्रन्थके आधार पर द्रव्योंके लक्षणोंकी सिद्धिके लिये स्वभाव की सिद्धि के लिये इस ग्रन्थ की रचनाकर रहा हूं। अपनी इस ग्रन्थ की रचना की प्रतिज्ञा नुसार आचार्य देवसेनने विस्तारसे संस्कृत भाषामें द्रव्यादि सोलह अधिकारों द्वारा इस ग्रन्थ का निर्माण कर भव्य जीवोंका महान् उपकार किया हैं।

ग्रन्थान्तर्गभित सोलह अधिकार निम्न प्रकारसे है– १ द्रव्य, २) गुण ३) पर्याय ४) स्वभाव ५) प्रमाण ६) नय ७) गुण व्युत्पत्ति ८) पर्याय व्युत्पत्ति ९) स्वभावव्युत्पत्ति १०) एकान्त पक्ष दोष ११) नय योजना १२) प्रमाण लक्षण १३) नय व्युत्पत्ति १४) निक्षेप व्युत्पत्ति १५) नयभेदोकी व्युत्पत्ति और १६) अध्यात्मनयोंका स्वरूप।

यह सम्पूर्ण रचना सरल अथ गंभीर सूत्रोंद्वारा संक्षेप में की गई है। यदि विस्तार से इनकी व्याख्या और टीका का जावे तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह एक जैन दर्शन निरूपक विशाल ग्रन्थ बन सकता है। वैसे द्रव्य पर्यायादि की प्ररूपणा करनेवाले जैन दर्शन के साहित्यमें अनेंक ग्रन्थ है। किन्तु एक स्थानपर सूत्ररूपमें सरलभाषामें क्रमबद्ध विवेचन करना इस ग्रन्थकी अनोखी विशेषता हैं। आत्म हितार्थी स्वाध्यायी बन्धु यदि शान्त चिन्त होकर निष्पक्ष भावसे इस ग्रन्थका अध्ययन, मनन और चिन्तन करें तो उन्हें न कोई तत्वज्ञान करनेमें भटकन हो सकती है न विवादो के घेरोंमें पडकर कोई उलझन। अभिप्राय यह कि सम्यक् यथार्थ दृष्टि और बोध प्रदान करनेके लिये इस ग्रन्थ की महती उपयोगिता है।

यद्यपि अनुवाद करते समय प्रकरणगत विशेष विशेष सूत्र स्थानोपर विशेषार्थ देकर विषयको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया गया है फिर भी क्रमबद्ध स्वाध्याय करनेमें सुविधाकी दृष्टि रखकर ग्रन्थके प्रतिपाद्य विषयका सामान्य परिचय दिया जा रहा है--

१) **द्रव्य--** यहां सर्व प्रथम लोक रचना और तत्वज्ञानके आधारभूत जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्योंका निर्देश करते हुए द्रव्यका लक्षण सत् है और सत् उत्पाद व्यय ध्रौव्यसहित होता है इस प्रकार द्रव्य और सत्का लक्षण निरूपितकिया गया हैं। छह द्रव्योंमें जीव चेतन हैं शेष अचेतन है, पुग्दल मूर्तिक है शेष अमूर्तिक हैं। इन्द्रियसे दिखनेवाला पुग्दल हैं जीव और पुग्दलोंको गमन करनेमें सहायक धर्म द्रव्य है और ठहरनेमें सहायक अधर्म द्रव्य हैं, सब द्रव्योंको अवकाश (स्थान) देनेवाला आकाश और परिवर्तनमें सहायक ~~अधर्म~~ काल द्रव्य है। जीव पुग्दल, धर्म अधर्म असंख्यात प्रदेशी, पुद्गल संख्यात असंख्यात अनन्तप्रदेशी, आकाश अनन्त प्रदेशी और काल द्रव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक प्रदेशी है। सत् (अस्तित्व) उत्पादव्यय और ध्रौव्यसहित होनेसे इनसे भिन्न कोई वस्तु नहीं हैं। और ये तीनो अभिन्न रूपसे एक समयही होते है जैसे एक स्वर्णकारने कडा मिटाकर हार बनाया तो उसी क्षण कडेका आकार मिटकर हार रूप आकार की उत्पत्ति हुई और कडे और हारमें स्वर्ण ज्यो का त्यो ध्रौव्यरूपसे बनी रही। सत् के भाव को सत्ता कहते हैं। सत्ता सर्व पदार्थ स्थित, एक समयमें उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक, सविश्वरूप (लोकालोकव्यापक), अनन्त पर्याय सहित और प्रतिपक्ष सहित होती हैं।[1] इस प्रकार वस्तु सत् लक्षणवाली, सत्स्वरूप ही है, वह स्वतः सिद्ध होनेसे अनादि निधन हैं, स्वसहाय, परिवर्तनशील और निर्विकल्पप्रमाणित है।[2] स्वभाव को छोडेबिना जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त तथा गुण युक्त पर्याय सहित है उसे द्रव्य कहते है।

२) गुण– जो द्रव्यके साथ त्रिकाल और उसके सम्पूर्ण भागोंमे रहते हैं वे गुण कहलाते है। गुणोंसे द्रव्यकी पहचान होनेसे इनका दूसरा पर्यायवाची नाम लक्षण भी कहा हैं। क्योंकि लक्षणसे लक्ष्यकी पहिचान होती है। द्रव्य के विना गुण नही होते और गुणोंके विना द्रव्य नही होता हैं।[3] इसप्रकार गुण सदा अन्वयी होते है। गुण दो प्रकार के होते है १) सामान्य २) विशेष। जो समान रूपसे सबद्रव्योंमे पाये जाते हैं उन्हे

---

१ पंचास्तिकाय गाथा। सत्तासव्वपयत्था सविस्सरुवा अणंत पज्जाया सप्पडिवक्खाएगा उत्पादवय धुवेहि संजुत्ता॥

२. पंचाध्यायी श्लोक। तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धं तस्मादनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पंच॥

३. पंचास्तिकाय १३। ३ च प्रवचनसारगाथा ८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य गुण कहा जाता हैं और जिनके द्वारा पृथक् पृथक द्रव्य की पहिचान होती हैं वे विशेष गुण कहे जाते हैं। अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व अचेतनत्व मूर्तत्व अमूर्तत्व ये दससामान्य गुण हैं। सबमें इनमे आदिके छह सब द्रव्योंमे पाये जाते है। किन्तु छहद्रव्योंमें जीवचेतन है तथा शेष द्रव्योंके अचेतन होनेसे व पुद्गल के मूर्त होनेसे शेष पांच द्रव्यों अमूर्त होनेसे, चेतनत्व और अचेतनत्व तथा मूर्तत्व अमूर्तत्व इन दो युगलोमेसे एक एक गुण दोनोंके होनेसे ये दो तथा अस्तित्वादि छह को मिलाकर प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठसामान्य गुण होते हैं। जिनका विभाजन निम्न प्रकार हैं।

१) जीव द्रव्यमें अस्तित्वादि छह चेतनत्व अमूर्तत्व दो मिलाकर ६+२=८ सामान्य गुण हैं।

२) पुद्गलमें अस्तित्वादिछह मूर्तत्व अचेतनत्व ये दो ६+२=आठ गुण होते हैं।

३) धर्म अधर्म आकाश और काल द्रव्योंमे अस्तित्वादि छह तथा अचेतत्व अमूर्तत्व ये दो मिलाकर ६+२=८ प्रत्येक में आठ आठ गुण होते है।

विशेषगुण– ज्ञानदर्शन, सुख वीर्य, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व ये द्रव्योके सोलह विशेष गुण है। इन का विभाजन छह द्रव्योमें निम्न प्रकार है–

१) जीवद्रव्यमें ज्ञान, दर्शन, सुखवीर्य, चेतनत्व अमूर्तत्व अमूर्तत्व ये छह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२) पुद्गल द्रव्यमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श अचेतनत्व ये छह ।

३) धर्मद्रव्य में गति हेतुत्व अचेतनत्व, अमूर्तत्व ये तीन ।

४) अधर्म द्रव्यमें स्थिति हेतुत्व अचेतनत्व अमूर्तत्व ये तीन ।

५) आकाश द्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व अचेतनत्व अमूर्तत्व ये तीन ।

६) काल द्रव्यमे वर्तना हेतुत्व अचेतनत्व अमूर्तत्व ये तीन । इस प्रकार छह द्रव्योंमें उनके विशेष गुण हैं ।

चेतनत्व अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये अपनी जातिकी अपेक्षा तो सामान्य गुण हैं किन्तु अपनेसे भिन्न विजाति को अपेक्षासे विशेष गुण हैं । जैसे चेतनत्व सब जीवोंमें पाया जाता है अतः वह सब जीवोंकी अपेक्षा सामान्य गुण है किन्तु जीव द्रव्यको छोडकर पुद्गल आदिमें नही पाया जाता हैं इस अपेक्षा यह जीवका विशेष गुण है ।

३) **पर्याय**– गुणोंके विकार (परिणमन) को पर्याय कहते हैं । गुण अन्वयी (एक साथ रहनेवाले) होते है उनका उत्पाद व्यय रूप परिणमन होना पर्याय नामसे व्यवहृत होता है । ये पर्याये एक के बाद दूसरी दूसरी के बाद तिसरी इस प्रकार नियत क्रमवर्ती होती हैं जैसे पुद्गल द्रव्यका रूपसे रूपान्तर होना रससे रसान्तर होना तथा जीवका ज्ञान गुणका घट ज्ञान पटज्ञान होना या चारित्र गुणका क्रोध मान रूप होना आदि । पर्याय दो प्रकारकी होती है १) स्वभाव पर्याय २) विभाव पर्याय जो पर्याय पर निरपेक्ष होती हैं वह स्वभाव पर्याय है यह अनन्त भाग वृद्धि आदि वृद्धिरूप और तथा अनन्त भाग हानि आदि हानिरूप इस प्रकार बारह प्रकारकी होती है ये सब पर्याये अगुरुलघु गुणके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण होती है। जो पर्याय पर सापेक्ष होती हैं उसे विभाव पर्याय कहते है विभाव पर्यायें केवल जीव और पुद्गल द्रव्यमें होती हैं क्योंकि ये दोनो द्रव्य परस्पर में (निमित्त नैमित्तिक संबंध होने पर) मिलकर विभाव रूप परिणमन कर जाते हैं।

पर्याय के दूसरी प्रकार से अर्थ पर्याय और व्यञ्जन पर्याय ये भी दो भेद है। अर्थ पर्याय तो छह द्रव्योंमें होती है वह सूक्ष्म है वचन अगोचर है, और क्षण क्षण उत्पन्न और नष्ट होती हैं। व्यञ्जन पर्याय स्थूल होती हैं वचनोंके द्वारा उसका कथन किया जा सकता है वह नश्वर होकर भी कुछ काल तक रहनेसे स्थिर होती है। उसके स्वभाव विभाव तथा द्रव्य पर्याय गुण पर्याय रूप भेद होते हैं। संसारी जीव की नर नारकादि पर्याय विभाव द्रव्य व्यंञ्जन पर्याय और मतिज्ञान आदि विभाव गुण व्यंजन पर्याय तथा स्कन्धके स्पर्शादि गुणोंका परिणमन विभाव गुणव्यंञ्जन पर्याय हैं। इन सब पर्यायोंसे युक्त द्रव्य होता है। द्रव्यार्थिक नयसे द्रव्यका उत्पाद और विनाश नहीं है सद्भाव है उसी की पर्याये उत्पाद विनाश और ध्रुवता धारण करती है।[1] पर्यायार्थिक नयसेही द्रव्य उत्पादवाला या विनाशवाला हैं इसी उत्पाद विनाश को पर्याय कहते है। वस्तुरुपसे द्रव्य और पर्यायोंका अभेद हैं क्योंकि पर्यायोंसे रहित द्रव्य और द्रव्यसे रहित पर्याय नही होती है इस प्रकार दोनोंमें अनन्य भाव है।[2] जल की लहरोंकी तरह द्रव्यमें प्रतिसमय अपनी अपनी अनादि अनन्त पर्यायें उत्पन्न होती और नष्ट होती है[3] इसलिये पर्यायें नियत क्रम वर्तीही होती है।

---

१. पंचास्तिकायगाथा ११
२. पंचास्तिकाय गाथा १२
३ आलाप पद्धति गाथा १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभाव– "स्वस्य भावः स्वभावः" 'स्व' अर्थात् द्रव्यका जो भाव है वह स्वभाव हैं, अथवा "स्वे (द्रव्ये) भावः स्वभावः अर्थात् द्रव्यमें होनेवाला जो भाव है वह स्वभाव है। गुणों द्वारा द्रव्य की पहिचान होती हैं और स्वभाव के द्वारा द्रव्यमे रहनेवाले भावो का ज्ञान होता है– यही गुण और भावमे अन्तर है। स्वभाव भी गुणोकी तरह सामान्य और विशेषसे दो प्रकारके होते हैं।

अस्तिस्वभाव, नास्तिस्वभाव, नित्य स्वभाव, अनित्य स्वभाव, एक स्वभाव, अनेक स्वभाव, भेद स्वभाव, अभेद स्वभाव, भव्य स्वभाव, अभव्य स्वभाव, और परमस्वभाव ये दश सामान्य स्वभाव है क्योंकि सामान्यरूपसे ये सभी द्रव्योंमें पाये जाते हैं। चेतन स्वभाव, अचेतन स्वभाव मूर्तस्वभाव, अमूर्त स्वभाव, एक प्रदेश स्वभाव, विभाव स्वभाव, शुद्ध स्वभाव, अशुद्ध स्वभाव और उपचारित स्वभाव ये द्रव्योंके विशेष स्वभाव है। इनमे कुछ स्वभाव ऐसे है जो विपरीत या परनिमित्तादि की अपेक्षा कहे गये है जैसे विभाव स्वभाव हैं वह स्वभावसे विरुद्ध होनेसे विपरीत होता है और प्रयोजनवश परके निमित्त होने पर उपचरित स्वभाव हैं. ये स्वभाव द्रव्य गत है यदिद्रव्यगत न हो तो वैसा वस्तुका परिणमन हो नही सकता है विभाव स्वभाव होनेसे जीवका ज्ञान अज्ञान रूप परिणमन कर जाता है। इन ग्यारह सामान्य स्वभावों तथादश विशेष स्वभावोंमे जीव और पुद्गलमें पूरे पूरे होनेसे इक्कीस इक्कीस स्वभाव होते हैं। चेतन स्वभाव, मूर्त स्वभाव विभाव स्वभाव, एक प्रदेश स्वभाव अशुद्ध स्वभाव इनके विनाशेष सोलह स्वभाव धर्म अधर्म आकाश और काल द्रव्य में होते है बहुप्रदेशीको छोडकर काल द्रव्यमे पंद्रह स्वभाव होते है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि वह एक प्रदेशी हैं। द्रव्यगुण पर्याय स्वभावादिकका ज्ञान प्रमाण और नय विवक्षासे होता है।

५) **प्रमाण**– पूर्वोक्त द्रव्य, गुण, पर्याय, स्वभाव आदिके जाननेका उपाय सम्यग्ज्ञानको ही प्रमाण कहते है। सम्यग्ज्ञानके द्वारा वस्तुका यथार्थ परिच्छेद (विश्लेषणात्मक ज्ञान) होता है। प्रमाण के पांच भेद है– मति, श्रुत अवधि, मनः पर्यय और केवल ज्ञान। मतिश्रुत ज्ञान परोक्ष है। क्योंकि वे इन्द्रिय और मन आदिकी पर की सहायतासे जानते है। जो अन्यकी सहायता के विना केवल आत्मासेही जानते है उसे प्रत्यक्ष कहते है। अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान रूपी और कर्म संबद्ध जीवोंको प्रत्यक्ष जानते है इसलिये देश प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान त्रिकाल त्रिलोकवर्ती पदार्थोंको एकसाथ जाननेसे सकल प्रत्यक्ष हैं।

स्वार्थ और परार्थकी अपेक्षा प्रमाणके दो भेद हैं। श्रुतज्ञान को छोडकर शेषचारों ज्ञान स्वार्थ प्रमाण हैं। क्योंकि उनमें वचनात्मक प्रवृत्ति नहीं होती हैं। श्रुतज्ञान स्वार्थ और परार्थ दोनों प्रकारका है। साथ वह सवितर्क भी हैं। ज्ञानात्मक प्रमाण को स्वार्थ प्रमाण कहते हैं और वचनात्मक प्रमाणको परार्थ कहते है।[1] वस्तु सामान्य विशेषात्मक होनेसे सबको विषय करनेवाला प्रमाणात्मक ज्ञान सकलादेशी हैं। 'स्यादस्ति' अर्थात् 'कथंचित्'

---

१. सर्वार्थ सिद्धि अ. १ सूत्र पृ २०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि सातभंगों का नाम सकलादेश है क्योंकि प्रमाण निमित्त होनेसे इसके द्वारा स्यात् शब्दसे समस्त अप्रधान धर्मोकी सूचना की जाती है।[1]

द्रव्य मात्र को कहना या पर्याय मात्र को कहना व्यवहार का विषय है। द्रव्य का भी तथा पर्याय का भी निषेध करके वचन अगोचर कहना निश्चय का विषय है। द्रव्य रूप ही वही पर्याय रूप है इस प्रकार दोनोंको ही प्रधान करके कथन करना या जानना प्रमाण का विषय हैं। प्रमाण और नय में प्रमाण ही श्रेष्ठ है क्योंकि जो पदार्थ प्रमाण के विषय है उन्हीं में नय की प्रवृत्ति होती हैं इसके साथ प्रमाण सकलादेशी होनेसे समुदाय को विषय करता है और नय अवयव को विषय करता हैं अतः नय से प्रमाण श्रेष्ठ है।

६) **नय**– प्रमाण के भेदों या विकल्पों को नय कहते है।[2] ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है। प्रमाण से गृहीत वस्तु के एक देश वस्तुका निश्चय करना ही अभिप्राय है[3] प्रमाण से प्रकाशित जीवादि पदार्थोकी पर्यायो का प्ररूपण करना नय है।[4] अनन्त पर्यायरूप वस्तु की किसी एक पर्याय का ज्ञान करते

---

१. धवला पु ८ पृ १६५
२. तदवयवानयाः। आलाप पद्धति सूत्र
३. धवला पु ८ पृ १६३।
४. धवला पु ८ पृ १६६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय विवाक्षित हेतु की अपेक्षा निर्दोष प्रयोग नय कहा जाता है।[1] अथवा जो वस्तु को नाना स्वभावोसे गौणकर, एक स्वभाव मे स्थापित करता है वह नय है। इस प्रकार आगम से अनेक स्थलोंपर भिन्न प्रकार से नय के लक्षण प्ररूपित किये गय है। उन सब के लक्षणोंका अभिप्राय केवल एक ही है कि वस्तु के एक देश को यथार्थ ग्रहण करके वस्तु का सच्चा ज्ञान करा देना जिससे ज्ञाता मोक्षमार्ग मे तत्वज्ञान करते समय कही भटके नही।

नय के भेद– नय के मूलभूत निश्चय और व्यवहार ये दो भेद है। निश्चय के साधन हेतु द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय हैं। द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजु सूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवं भूत ये नौ नय है। जो नयो के समीप होते है वे उपनय है उसके तीन भेद है–सद्भूत व्यवहार, असद् भूत व्यवहार और उपचरितासद् भूत व्यवहार।

द्रव्यार्थिक नय के कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उत्पाद व्यय गौण सत्ताग्राहक द्रव्यार्थिक नय, भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय आदि दश भेद है।

पर्यायार्थिक नयके अनादि द्रव्य पर्यायार्थिक सादि नित्य पर्यायार्थिक, अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक आदि छह भेद हैं। नैगम नय के भूत, भावि, वर्तमान नैगमनय ये तीन भेद है। संग्रह नय के सामान्य संग्रह नय और विशेष संग्रह नय ये दो भेद है।

---

१. धवला पु ८ पृ. १६७।
२. आलाप पद्धति सूत्र १५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी प्रकार व्यवहार नयके भी सामान्य भेदक व्यवहार नय और विशेष भेदक व्यवहार नय येदो भेद है।

ऋजु सूत्र नयके सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय और स्थूल ऋजु सूत्र नय ये दो भेद हैं।

शब्द, समभिरूढ और एवंभूत नयके प्रत्येकके एक ही भेद हैं। इस प्रकार सब नयोंके सब मिलकर १०+६+३+२+२+२+ १+१+१=२८ भेद होते है।

जो न यो के समीप होते है वे उपनय कहलाते हैं। अब उपनय के भेद कहते हैं। सद्भूत व्यवहार नय के दो भेद हैं। शुद्धसद्भूत व्यवहार नय अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय। असद्भूत व्यवहार नय के तीन भेद हैं- १) स्वजाति असद्भूत व्यवहार नय, २) विजाति असद्भूत व्यवहार नय, ३) स्वजातिविजाति असद्भूत व्यवहार नय। उपचारित असद्भूत व्यवहार नयके तीन भेद है। १) स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, २) विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय तथा, ३) स्वजाति विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।

(नोट- इन सब के उदाहरण वलक्षण ग्रन्थमें सूत्र की टीका में व्याख्यान करेंगे वहां से विशेष देखें) नयों के व्याख्यान का प्रयोजन- इन सब नयों का व्याख्यान यथार्थ परिज्ञान की प्राप्ति में साधक होने से मोक्षका कारण है। जैसा वीरसेन स्वामीने धवला टीका में निरूपित किया हैं कि नय पदार्थों के यथार्थ परिज्ञान मे निमित्त होनेसे मोक्षका कारण हैं। उसका हेतु पदार्थों की यथार्थ उपलब्धि की निमित्तता है।[1] अभिप्राय यह है कि

---

१. धवला पु ८ पृ १६६-१६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्रूपसे नयों के ज्ञानसे सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति होती है। और यथातथ्य ज्ञान होने पर ही रागद्वेष की निवृति रूप चारित्र धारण करना सुगम हो जाता हैं। इसप्रकार रत्नत्रय की प्राप्ति का मूल कारण नय ज्ञान सिद्ध होता हैं।

इस ग्रन्थमे भी नयके निश्चय और व्यवहार दोही भेद निरूपित किये है इन दोनोंका यथार्थ समन्वयात्मक ज्ञान न होनेसे निश्चय या व्यवहार रूप एकान्त दृष्टि होनेके कारण साधक की साधना अधूरी रहती हैं। पंडीतप्रवर आशाधरजी अनगार धर्मामृतमे इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि निश्चयसे निरपेक्ष व्यवहार नय का विषय असत् है अतः निश्चय निरपेक्ष व्यवहार का उपयोग करने पर स्वार्थका विनाश हो जाता हैं जैसे निश्चय के समान घी चावल आदिके विना व्यवहार के समान दाल शाक खानेवाला कभी स्वस्थ नही रह सकता है। वैसेही निश्चयसे विमुख अभूतार्थ व्यवहार की भावना करनेवाला अपने मोक्ष सुख स्वार्थसे भ्रष्ट होता है कभी मोक्ष सुख प्राप्त नही कर सकता है।[1] जैसे निश्चय शून्य व्यवहार व्यर्थ हैं। उसी प्रकार व्यवहार के विना निश्चय भी कार्यकारी नही है– जो साधक व्यवहारसे विमुख होकर निश्चय को करना चाहता है वह मूढ बीज, खेत पानी आदि के विना वृक्ष आदि फलों को उत्पन्न करना चाहता है।[2] अर्थात् किसीको किसी कालमे व्यवहार नय भी तावत्काल प्रयोजनीय है। अभिप्राय यह जैसे मोक्षमार्गमे व्यवहार

---

१. अनगर धर्मामृत १ श्लोक ९९

२. अनगार धर्मामृत १ श्लोक १००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय का ज्ञान आवश्यक हैं वैसे अन्य नयों का भी ज्ञान आवश्यक हैं अतः मोक्ष मार्ग के किये नय ज्ञानपरमा आवश्यक हैं ।

७) गुणोंकी व्युत्पत्ति

इस अधिकारमें आचार्य देवसेनने व्याकरणके नियमके अनुसार भाव वाचक 'त्व' प्रत्यय लगाकर पृथक् पृथक् रूपसे गुणोंकी व्युत्पत्ति की हैं । इस व्युत्पत्तिसे उस गुणका सही भावार्थ और प्रयोजन समझमें आ जाता है । जो द्रव्य के साथ त्रिकाल सदा रहते हैं उन्हे गुण कहते है । जो सदा एक के बाद एक क्रमसे उत्पाद-व्यय परिणमन करती रहती हैं वह पर्याय हैं । जो एक द्रव्य को अन्य द्रव्यसे पृथक करते है वे गुण है । प्रत्येक द्रव्यमें अपने सामान्य और विशेष गुण रहते हैं । सामान्य गुण तो सबद्रव्योंमें समान रूपसे होते है किन्तु असाधारण (विशेष) गुणके द्वारा अपने द्रव्य को पृथक पहिचान होनेसे इसी पहिचानसे अन्य द्रव्यसे उसे पृथक किया जाता है । जैसे जीव चेतन गणके कारण अन्य द्रव्यसे पृथक है । इस कारण इसे विशेष गुण कहते हैं । अस्ति 'है' (सत्ता) के भावको अस्तित्व कहते हैं । जिसमें सामान्य विशेष गुण वसते हैं वह वस्तु हैं वस्तुके भाव को वस्तुत्व कहते हैं । अपने प्रदेश समूहों द्वारा जो पर्यायोंको प्राप्त करता हैं प्राप्त कर चुका है और प्राप्त करेगा वह द्रव्य हैं । द्रव्य के भावको द्रव्यत्व कहते है । प्रमेय (ज्ञेय) के भावको प्रमेयत्व कहते है प्रत्येक पदार्थ ज्ञानका विषय होनेसे प्रमेय हैं । अगुरु लघुगुण सूक्ष्म है, वचन अगोचर हैं उसके संबंधमें कुछ कही नही जा सकता है जिनेन्द्र भगवान की आज्ञासेही सिद्ध हैं । अगुरुलघुके भावको अगुरु लघुत्व कहते है । आकाशका पुद्गल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमाणुद्वारा रोका गया सबसे छोटा हिस्सा प्रदेश है– प्रदेशोंसे युक्त भावको प्रदेशवत्व कहते हैं। अनुभव करना चैतन्य हैं चेतन के भावको चेतनत्व कहते हैं। अचेतन (अननुभव) के भाव को अचेतनत्व कहते है। मूर्त के भावको मूर्तत्व और अमूर्तके भावको अमूर्तत्व कहते है।

८) **पर्याय व्युत्पत्ति–**

पर्याये क्रमवर्तीही होती हैं परिणमन करना ही उनका स्वभाव है। ये पहिले कह आये है कि धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्योंमें स्वभाव पर्याये ही होती हैं। किन्तु जीव और पुद्गल से विकारी अविकारी दोनों प्रकारका परिणमन होनेसे उनमे स्वभाव तथा विभाव दोनों प्रकारकी पर्याये होती हैं। स्वभाव विभावरूपसे जो परिणाम करें उसे पर्याय कहते हैं। (पर्येनि परिणमतीणि पर्यायः) यह पर्याय की व्युत्पत्ति हैं।

९) **स्वभाव व्युत्पत्ति–**

इस अधिकारमें द्रव्यों में रहनेवाले स्वभावोंका विस्तारसे विवेचन किया है। आलाप पद्धतिका यह अधिकार स्वभावोंके स्वरूपको प्रकट करनेमें अपनी विवेचन पद्धति की अनोखी विशेषता रखता हैं। वस्तु का 'स्व' अर्थात् अपने रूपसे रहना या वर्तन करना स्वभाव हैं। यहां अस्तित्वादि स्वभावोंकी हेतुपूर्वक सिद्धि की गई हैं जो स्वभाव एक दूसरे के विरुद्ध से लगते है उनका कारण पूर्वक विवेचन किया है। प्रथम अस्तित्व वस्तु की सत्ता का परिचायक होनेसे जो द्रव्य अपने स्वभावके लाभसे कभी च्युत नही होता है सदा अपने स्वभावमे स्थिर रहता है अतः अस्तित्व स्वभाव हैं"। इस प्रकार हेतुपूर्वक अस्तित्व स्वभाव की सिद्धि की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई है। पर स्वरूप नहीं होनेसे नास्तित्व स्वभाव हैं। निज निज नाना पर्यायोंमें "यह वही है" इस प्रकार द्रव्य की उपलब्धि होती रहती है इसलिये नित्य स्वभाव हैं अनेक पर्यायोमें परिणमन शील होनेसे अनित्य स्वभाव है। इसी प्रकार एक स्वभाव अनेक स्वभाव, भेद स्वभाव अभेद स्वभाव, भव्य स्वभाव अभव्य, स्वभाव की प्ररूपणा करते हुए सब द्रव्य के स्वभावोंको लेकर द्रव्योंको भिन्न भिन्न सत्ता सिद्ध की हैं। और बतलाया है कि सब द्रव्ये लोकाशमें हिले मिले एक साथ रहते हुए एक दूसरे को स्थान दिये हुए हैं। जहां धर्म द्रव्य है वहां उसका विरोधी अधर्म द्रव्य भी है वही शेष द्रव्य भी है। सब हिल मिलकर रहते हुए अपने स्वभाव को नही छोडते है।

पारिणामिक भाव की प्रधानता होनेसे परम स्वभाव हैं इस प्रकार यहा सामान्य स्वभावोंकी व्युत्पत्ति की हैं। चेतनादि विशेष स्वभावोंकी व्युत्पत्ति पहिले कर चुके हैं।

धर्मकी अपेक्षा स्वभाव गुण नही हैं किन्तु द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा वे स्वभाव हो जाते है। जैसे अस्तित्व अपने अस्तित्व स्वभाव की अपेक्षा गुण नही वस्तुका धर्म है वही वस्तुके साथ सदाकाल और वस्तु के सम्पूर्णभागों में रहने से उसमे गुण का लक्षण घटित होनेसे वही अस्तित्व गुण भी है। इसी प्रसंग मे यहा शुद्ध अशुद्ध स्वभाव विभावोंका स्वरूप बतलाते हुए उपचरित स्वभावको कर्मजन्य और स्वभाविक दो प्रकार प्ररूपित किया है। जीवमे मूर्तपना अचेतनपना कर्मजन्य तथा सिद्धों को पर का ज्ञाता द्रष्टा कहना स्वाभाविक उपचरित स्वभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०) एकान्त पक्ष दोष–

इस अधिकारमें वस्तु को सर्वथा एकान्त माननेसे क्या क्या दोष पैदा होते है इसका दिग्दर्शन कराया गया है। वस्तु में अनेक रूपता होती हैं और दुर्नयके विषय भूत एकान्त रूप (एक रूपतावाला) पदार्थ वास्तविक नही है क्योंकि दुर्नय केवल स्वार्थिक वे अन्य नयोंकी उपेक्षा करके केवल अपनी ही पुष्टि करते हैं। इसके साथ जो स्वार्थिक होनेसे विपरीत होते है वे नय नियमसे सदोष होते है। इसी आधार को लेकर ग्रन्थकार एकान्त सद्रूप या एकान्त असद्रूप आदि मानने वालोंमें क्या क्या कठिनाईयां उत्पन्न होगी इन्हीका स्पष्टीकरण करते हुए कहते है कि यदि वस्तुको सर्वथा एकान्तसे सत्रूप माना जावेगा तो सब पदार्थोंके सत्रूप होनेसे संकर आदि दोषोकी उत्पत्ति होगी और उससे नियत अर्थ व्यवस्था नहीं बन सकेगी। अर्थात् जब जब वस्तुको सद्रूप माना जावेगा तो वस्तु सर्वरूप प्रकारसे सत् ही होगी ऐसी स्थितिमें जीव पुद्गल और पुद्गल जीव हो जावेगी क्योंकि सद्रूपता में पृथक् पृथक् की कोई व्यवस्था है ही नही।

इसी प्रकार वस्तुको सर्वथा असत् रूप–अभाव रूप मानने से समस्त संसार की शून्यता का प्रसग आवेगा। वस्तु को सर्वथा नित्य माननेमेंभी वस्तु सदा एक रूप रहेगी और एक रूप वस्तुके रहने से परिणमनके अभावमें अर्थक्रिया नही बन सकेगी। वस्तु को सर्वथा अनित्य (क्षणभंगुर) मानने में दूसरे क्षण वस्तुका सर्वथा विनाश हो जानेसे वह कुछकार्य नही कर सकेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार एकान्त से सर्वथा एक रूप तथा अनेक रूप, सर्वथा भेदरूप या अभेद, सर्वथा भव्य रूप या अभव्य रूप, सर्वथा स्वभाव रूप या विभाव रूप, सर्वथा चैतन्य रूप या अचैतन्य रूप, सर्वथा मूर्तिक या अमूर्तिक रूप, सर्वथा एक प्रदेशी या अनेक प्रदेशी, सर्वथा शुद्ध या अशुद्ध, सर्वथा उपचरित या अनुपचरित मानने में कैसे कैसे दोषोंका उद्भावन होगा और वस्तु व्यवस्था में क्या क्या परेशानियां होगी इनका यहां विस्तारसे प्ररूपण किया हैं।

अन्तमें सर्वथा एकान्त माननेवालोंसे पृच्छा की गई है कि बतलाइये ? कि सर्वथा शब्द सार्व प्रकार वाचक हैं अथवा सर्वकाल वाचक है अथवा अनेकान्तसापेक्ष वाचक है। चूंकि सर्व शब्द का पाठ व्याकरण शास्त्रमें सर्वगण में होनेसे यदि वह सर्वकाल वाचक हैं या अनेकान्त वाचक हैं तो हमारा ही अभिप्राय सिद्ध होता हैं अर्थात् वस्तु एक रूप सिद्ध न होकर अनेक रूपही सिद्ध होती हैं। क्योंकि सर्वथा का अर्थ सर्वकाल सब प्रकार अथवा अनेक धर्मात्मक होता हैं। यदि आप नियम वाचक मानते है कि वस्तु उस विवक्षित एक धर्मरूप ही हैं तो आपके मत में एक-अनेक, नित्य अनित्यादि धर्मोकी प्रतीति कैसे संभव हैं? क्योंकि आप तो पदार्थ के केवल एक ही नियत पक्षको स्वीकार करते है। इस प्रकार सर्वथा एकान्त पक्ष माननेवालोंको दूषण देकर यहाँ उनका न्यायसे निराकरण किया गया है।

११) नय योजना–

इस ग्रन्थ का यह प्रकरण वस्तु व्यवस्था को समझने के लिये बहुतही महत्व पूर्ण और उपयोगी हैं। लोकस्थित द्रव्योंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभावों की सिद्धिके लिये यहां विस्तारसे नयों की योजना की गई हैं।" प्रमाण तो उन नाना स्वभावोंसे युक्त द्रव्य को एक साथ जानता है किन्तु उनको पृथक् पृथक् कौन नय किस अपेक्षा से जानता हैं" इसी आधार को लेकर अस्तित्वादि बीस स्वभावोंके माध्यमसे उनको ग्रहण करनेवाले नयों की विस्तार से चर्चा की गई हैं। स्वद्रव्य स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव को ग्रहण करनेवाले नय की अपेक्षा अस्तित्व स्वभाव हैं। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और पर भाव को ग्रहण करनेवाले नय की अपेक्षा नास्तिक स्वभाव है (अर्थात् स्वद्रव्यक्षेत्रादि द्रव्य की अपनी मर्यादा है पर द्रव्यक्षेत्रादि पर द्रव्य की मर्यादा हैं)। उत्पाद व्यय को गौण करके सत्ता को मुख्यतासे ग्रहण करनेवाले नय की अपेक्षा नित्य स्वभाव है। (इस नय में द्रव्य की मुख्यता हैं।) किसी पर्याय को ग्रहण करनेवाले नय की अपेक्षा अनित्य स्वभाव है (यहां पर्याय ग्रहण की मुख्यता है।) भेद कल्पना निरपेक्षनयसे एक स्वभाव हैं। (जहां एक होता हैं वहा द्वितीयादि का भेद नही होता है।) अन्वय ग्राही द्रव्यार्थिक नय अपेक्षा एक होते हुए भी द्रव्य अनेक स्वभाव है। (अनेक होते हुए भी 'यह वही है। इस प्रकार अनेको में एकता का प्रत्यभिज्ञान बनारहता है। यही द्रव्य के ग्रहण की अन्वय ग्राह्यता है। इसी प्रकार भेद स्वभाव, अभेद स्वभाव, भव्य स्वभाव अभव्य स्वभाव, चेतन स्वभाव, अचेतन स्वभाव, मूर्त स्वभाव, अमूर्त स्वभाव, एक प्रदेशी स्वभाव, बहु प्रदेशी स्वभाव, विभाव स्वभाव, शुद्ध स्वभाव, अशुद्ध स्वभाव और उपचारित स्वभाव इन सब स्वभावोंकी व्यवस्थिति किस किस नय की अपेक्षा है इसका निर्देश यहां विस्तारसे किया गया है। पुद्गल और जीव ये वैभाविक परिणत होनेसे उनकी कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषताए निम्न प्रकारसे हैं– जीव में असद् भूत व्यवहार नय की अपेक्षा कर्म नोकर्म भी चेतन स्वभाव हैं, (क्योंकि जीव के साथ संश्लेष संबंध हैं) किन्तु परम भाव ग्राहक नय की अपेक्षा कर्म नोकर्म अचेतन स्वभाव हैं (क्योंकि वे पुद्गल से रचित होनेके कारण अचेतन ही हैं।) यद्यपि पुदगल का अणु उपचारसे भी अमूर्तिक नही हैं फिर भी साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष (इन्द्रिय प्रत्यक्ष) का विषय न होनेसे असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा से उसमे अमूर्तत्व का आरोप कर लिया जाता हैं।

इस नय योजनाका इतना ही आशय है कि यावन्मात्र द्रव्यका जैसा स्वभाव है उसी प्रकार वैसाही व्यवस्थित हैं, वैसा ही प्रमाण ज्ञानसे जाना जाता है और प्रमाण के अवयव नय भी उसी प्रकार से जानते है।

१२) प्रमाण–

सकला देशी होनेसे जो पूर्ण वस्तु को ग्रहण करनेवाला होता हैं या करता है वह प्रमाण है। जिसके द्वारा वस्तुतत्त्व को जाना जाता हैं वह प्रमाण हैं। वह दो प्रकार का हैं- सविकल्प और निर्विकल्प। मन की सहायतासे उत्पन्न होनेवाले ज्ञान को सविकल्प कहते है। उसके चार भेद है- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान। जो मन की सहायता के बिना केवल आत्मासेही उत्पन्न होता हैं वह निर्विकल्प केवल ज्ञान है।

१३) नय की व्युत्पत्ति–

प्रमाण के द्वारा गृहीत वस्तुके एक अंश को ग्रहण करने को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नय कहते है। प्रमाण के द्वारा वस्तु के सब अंशो को ग्रहण करके ज्ञाता पुरुष अपने अभिप्रायके अनुसार उनमें से किसी एक धर्म की मुख्यतासे वस्तु को ग्रहण करता है वही नय है। इसी आधार से ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहा है। श्रुत ज्ञान के भेद नय है। इस प्रकार जो नाना स्वभावों से वस्तु को पृथक कर एक स्वभाव में स्थापित कर देता है वह नय है। उसके भी दो भेद हैं– शब्दात्मक सविकल्प और ज्ञानात्मक निर्विकल्प।

१४) निक्षेप व्युत्पत्ति–

प्रमाण नययोर्निक्षेपणं- आरोपणं निक्षेपः इस संस्कृत व्युत्पत्तिके अनुसार जो प्रमाण नय द्वारा वस्तुको भेद विवेक्षामें निक्षेपण करता या आरोपण करता है वह निक्षेप है। बाह्यार्थ के विकल्पों की प्ररूपणा अथवा अनधिगत पदार्थ के निराकरण द्वारा अधिगत अर्थ की प्ररूपणा का नाम निक्षेप है। प्ररूपणा के लिये निक्षेपोंका प्रयोग अनिवार्य है। उसके विना प्ररूपणा बन नही सकती। निक्षेप अनेक प्रकारके हैं क्योंकि जहां बहुत ज्ञातव्यहो वहां नियमसे अपरिमित नयों का प्रयोग करना चाहिये। और जहां बहुत को नही जानना हो वहां नामादि चार निक्षेपों का प्रयोग करना चाहिये।[1]

१५) नय के भेदों की व्युत्पत्ति–

इस अधिकार में विस्तार से द्रव्यार्थिक आदि नयों तथा उनके भेद उपभेदों को व्याकरण के नियम के अनुसार किस नय का क्या प्रयोजन हैं इस अभिप्राय को प्रकट करते व्युत्पत्ति की गई

---

१. धवला पु ८ पृ. १४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। जैसे द्रव्य ही जिसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन हैं वह द्रव्यार्थिक नय हैं शुद्ध द्रव्य ही जिसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन हैं वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय हैं, इसी प्रकार अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय, अन्वय द्रव्यार्थिक नय स्वद्रव्यादिग्राहक, परद्रव्यादिग्राहक, परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की व्युत्पत्ति की गई।

पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय हैं। द्रव्यार्थिक नय को तरह यहां भी पर्यायार्थिक नय के भेद अनादि द्रव्य पर्यायार्थिक सादि द्रव्यपर्यायार्थिक शुद्ध पर्यायार्थिक, अशुद्ध पर्यायार्थिक इन को व्युत्पत्ति इसी के अन्तर्गत की गई है।

जो एक को नही जाना उसे निगम कहते हैं। निगम का अर्थ है सकल्प। उसमें जो हो उसे नैगम नय कहते हैं। अर्थात् जो संकल्प मात्र को ग्रहण करना है। जो अभेद रूप से समस्त वस्तुओंको संग्रहकर ग्रहण करता है उसे संग्रह नय कहते हैं। इनके समान ही यही व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत नयों को व्युत्पत्ति से विवेचित किया है।

इसके अनन्तर नयों के भेदों का निर्देशकर उनकी विधिवत् व्युत्पत्ति प्ररूपित की है– शुद्ध निश्चयनय और अशुद्ध निश्चय नय नयके भेद है। अभेद और अनुपचार से वस्तुका निश्चय करना निश्चय नय है। और भेद तथा उपचारसे वस्तुका व्यवहार करना व्यवहार नय हैं। गुण गुणी मे भेद करना सद्भू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार है अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म में आरोप करनेको असद्भूत व्यवहार कहते है। असद्भूत ही उपचार हैं। इस प्रकार इन्ही के अन्तर्गत उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, सद्भूत व्यवहार नय का अर्थ करके द्रव्य मे द्रव्यका उपचार आदि असद्भूत व्यवहार नय के नौ प्रकार प्ररूपित किये है।

उपचार कोई अन्य नय नही होनेसे उसे अलग से नही कहा गया है। मुख्यका अभाव होने पर और प्रयोजन तथा निमित्तके होने पर उपचार किया जाता हैं। यह अविनाभाव संबंध आदि को लेकर होता है इस तरह उपचरित असद्भूत व्यवहार का अर्थ सत्यार्थ, असत्यार्थ, और सत्यासत्यार्थ होता हैं।

१६) अध्यात्म नयों का स्वरूप–

जहां मुख्यरूप से आत्मस्वरूपका प्रतिपादन किया जाता हैं व अध्यात्म कहलाता है। इस प्रकरण में आत्मस्वरूप के प्रतिपादन में प्रत्युक्त होनेवाले नयों का निरूपण है। अध्यात्म भाषाके मूल नय निश्चय और व्यवहार ये दो ही हैं। उनमें निश्चय अभेद को विषय करता हैं और व्यवहार भेद को विषय करता है।

निश्चयके दो भेद है– शुद्ध निश्चय और अशुद्ध निश्चय। उनमे से गुण गुणी में उपाधि रहित अभेद को विषय करनेवाला शुद्ध निश्चय और उपाधि सहित अभेद को विषय करनेवाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुद्ध निश्चय नय हैं। व्यवहारके भी सद्भूत व्यवहार असद्भूत व्यवहार ये दो भेद है। सद्भूत के भी उपचरित सद्भूत व्यवहार और अनुपचरित सद्भूत व्यवहार ये दो भेद है। उपाधि सहित गुण गुणीमे भेद व्यवहार करना उपचरित सद्भूत व्यवहार और निरुपाधि गुणगुणी में भेद व्यवहार करना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय हैं। असद्भूत व्यवहार के भी दो भेद है—उपचरित असद्भूत व्यवहार और अनुपचरित असद्भूत व्यवहार। मेल रहित पृथक् वस्तुओंके संबंध को विषय करनेवाला उपचरित असद्भूत व्यवहार नय और मेल सहित वस्तुओंमें संबंध को विषय करनेवाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

अध्यात्म में सब जगह व्यवहार नय को अभूतार्थ और शुद्ध नय निश्चय नय को भूतार्थ कहा हैं। इसका कारण यह है कि व्यवहार नय अविद्यमान असत्य अभूत असत् स्वरूपका निरूपण करता है और निश्चय नय विद्यमान सत्यभूत सत्रूप जैसा वस्तुका स्वरूप हैं वैसा निरूपण करता है इसी निश्चय के आश्रयसे ही सम्यक् दर्शन प्रकट होता है। व्यवहार के असत्यार्थ कहनें का प्रयोजन यह है कि शुद्ध नय को विषय अभेद एकाकार नित्य द्रव्य हैं वह भेद को स्वीकार नही करता हैं इसलिये निश्चय की अपेक्षासे व्यवहार नय अविद्यमान असत्यार्थ है। ऐसा नही समझना चाहिये कि भेद कोई वस्तु ही नहीं है। वस्तु स्वरूप को समझने के लिये निचली दशा में व्यवहार भी प्रयोजनवान् हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ के अनुशीलनसे ऐसा ज्ञात होता है कि द्रव्य, गुण, पर्याय, प्रमाण, नय और निक्षेप के स्वरूप को दिखलाने वाला जैन दर्शनका यह एक सूत्ररूपको विवेचना करनेवाला प्रकृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ हैं। स्यादाद जानने के लिये इस ग्रन्थमें प्ररूपित नयवाद जानना अत्यावश्यक है।

आ. देव सेन का समय और उनकी अन्य रचनायें–

यह जो सुनिश्चित है कि आलापपद्धति के रचयिता आ. देवसेन ही हैं क्योंकि रचयिता ने स्वयं इस ग्रन्थके अन्तमें 'सुख बोधनार्थ आलापपद्धति श्रीमद्देवसेन विरचिता परिसमाप्ता' यह गद्यात्मक वाक्य लिखकर यह बात स्वयं ही स्पष्ट कर दी। स्व. श्रद्धेय पं. कैलाशचन्दजी 'पडितदेव सेन विरचिता' यह पाठ अपनी आलापपद्धतिके अनुवादमें ग्रंथमें दिया है। यह पंडित विशेषण उन्होने ज्ञानी मुनि इस पर लगाया हैं। आलाप पद्धतिके अतिरिक्त आचार्य देवसेन स्वरचित तत्वसार ग्रन्थ के अन्तमें 'मुणिणाह देवसेणेण' पाठ देकर भी यह स्पष्ट घोषित कर दिया है कि वे मुनिनामा आचार्य ही थे।

लघुनय चक्र के आधार पर यह आलाप पद्धति उन्होने बताई थी। सन १९२० में माणिक चन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से उनके सोलहवें पुष्प के रूप में नयचक्रादि संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था उसके प्रारम्भ में देवसेनकृत लघुनय चक्र हैं और इसी नय चक्रके आधार पर आलाप पद्धति की रचना हुई हैं। स्व. श्र. पं. कैलाश चन्द्रजीने नयचक्र की प्रस्तावनामें इस का खुलासा इस प्रकारसे किया है– देवसेन के नय चक्र मे ८७ गाथाए (यह माइल्ल धवलके प्राकृत नयचक्रसे रचित नय चक्र से भिन्न है।) देवसेन ने अपना दर्शनस्तर धारानगरी में निवास करते हुए विक्रम सं. ९९० में रचकर समाप्त किया था। जो दो गाथाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहा दी है उसका भाव यह है कि 'पूर्वाचार्य रचित गाथाओं का एकत्र संग्रह करके देवसेन गणी ने धारानगरी में निवास करते हुए यह दर्शनसार जो कि भव्यों के लिये साररूप हैं श्री. पार्श्वनाथ जिनालय में वि. सं. ९९० को माघ सुदी दशमीं को रचा हैं"। अतः यदि यही देवसेन नय चक्र के कर्ता है तो नयचक्र विक्रम की दशमी शताब्दी के अन्त में रचा है। अपने नय चक्र के आधार पर उन्होने आलाप पद्धति की रचना की है। दोनो का विषय समान है। नयचक्र प्राकृत भाषा में निबद्ध है और आलाप पद्धति संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं उसके आरम्भ में लिखा हैं–

'आलापपद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नयचक्रोपरि उच्यते' फिर प्रश्न किया गया कि उसकी क्या आवश्यकता हैं? अर्थात् नय चक्र की रचना करने के बाद आलापपद्धतिकी रचना किस प्रयोजन से की जाती है तो उत्तर दिया है कि– द्रव्यलक्षण की सिद्धि के लिये और स्वभाव की सिद्धिके लिये इन दोनोंका कथन नय चक्रमें नही हैं। अतः आलापपद्धतिके प्रारम्भ में द्रव्य गुण, पर्याय और स्वभाव का कथन करके नयचक्र में प्रतिपादित नय और उपनय के भेदों का कथन किया गया है। उपलब्ध साहित्य मे केवल नय को रचे जानेवाले ग्रन्थ देवसेनकृत नयचक्र और आलाप पद्धति ही हैं। इनके सिवाय इस तरह के किसी अन्य ग्रन्थ इसके पूर्व रचे जानेका कोई उल्लेख भी दिगम्बर परम्परामें हमारे देखने में नही आया। इसके पश्चात् ही द्रव्य प्रकाशक नय चक्र तथा श्रुतभवन दीपक नयचक्र रचा गया है"।

अभीतक आ. देवसेन की निम्नलिखित रचनाए प्रकाशमें आई हैं– १ भावसंग्रह– इसमें चौदह गुणस्थानोंके स्वरूपका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विस्तृत वर्णन करने के साथ उनमें पाये जानेवाले औपशमिकादि भावोंकी विस्तार से निरूपण किया है। मंगलाचरण, उत्थानिका और अन्तिम उपसंहार की गाथाओंको मिलाकर सब ७०१ गाथायें है। गुणस्थानों के स्वरूपका वर्णन एवं अन्य मतों की उत्पत्ति-निरूपण करनेवाली गाथाएँ प्रायः प्राचीन ग्रन्थोंसे संकलित की गई हैं। अतः यह संग्रह का सार्थक नाम है। आ. देवसेनकी रचनाओं में यह सबसे बडी रचना है।

२ आराधनासार- इसमें ११५ गाथाओं द्वारा दर्शनाराधना ज्ञानाराधना, चारित्राराधना और तपाराधना इन चार आराधनाओं का वर्णन किया गया है। भगवती आराधना नामसे प्रसिद्ध आ. शिवार्य की विस्तृत मूलाराधानाका सार खींचकर इसकी रचना की गई हैं।

३ लघुचक्रनय या लघु नय चक्र-- इसमे ८७ गाथाकों द्वारा नयोंका स्वरूप उनकी उपयोगिता और भेद प्रभेदोका वर्णन किया है।

४ दर्शनसार-- इसमे ५१ गाथाओं द्वारा श्वेताम्बर मत, बौद्धमत, द्राविड संघ, यापनीय संघ, माथुर संघ और भिल्ल संघ की उत्पत्ति का वर्णन कर उसकी समीक्षाकी गई है।

५ तत्त्वसार-- इस ग्रन्थमें ७४ गाथाओ द्वारा जीवोंके सबसे अधिक उपादेय शुद्धतत्वकी उपलब्धि कैसी होती है इसका वर्णन किया गया है। वस्तुतः इसके पूर्वरचित द्वादशांगवाणी के सारभूत समयसारादि ग्रन्थोकासार ही खींचकर इसमें निबद्ध कर दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपरिलिखित सभी ग्रन्थ प्राकृत भाषा में रचे गये हैं।

६ आलाप पद्धति– यह प्रस्तुत गद्य संस्कृत भाषामें रचित एक मात्र ग्रन्थ बहुतसमय से आ. देवसेन का उपलब्ध है। करीब ६५ वर्ष पूर्व पे मूलचन्द्रनी विलौआ प्र. आ. सागरनें जैन सिद्धान्त संग्रहमे मूलरूप में प्रकाशित किया था। इसके करीब दशवर्ष बादकी पं. फूलचन्द जी. सि. शा. ने इसकी हिन्दी टीका कर नातेपुते से प्रकाशित किया था। अनन्तर पं रतनचन्द्रजी मुख्तार साहेब द्वारा सहित विस्तार की गई टीका यह महावीरजी से प्रकाशित हुआ था। किन्तु ये संस्करण अब उपलब्ध नही है। इस ग्रन्थमें १६ अधिकारों द्वारा द्रव्य गुण, पर्याय स्वभाव प्रमाणादिक विषयों पर सुन्दर विवेचन किया गया हैं। पूरा ग्रन्थ सूत्र रूप में है। नय और उपनयों का विस्तार से एक स्थान पर वर्णन करनेवाला अपने ढंग का एक अनूठा ग्रन्थ हैं। स्याद्वाद जाननेके लिये यह नय वाद जानना आवश्यक हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थकी अनूदित पाण्डुलिपि श्री मुनि गुप्तिसागरजी महाराज व मा. पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनीने ध्यानसे अवलोकन कर अपने सुझाव दिये इसके लिये इन दोनो महानुभावों का हृदयसे कृतज्ञ हूँ। डॉ. देवेन्द्रकुमारजी नीमच डॉ. फूलचंद प्रेमी व डॉ. कमलेशजी बनारस ने ध्यान से इसे अध्ययनकर अपनी सत्सम्मति देकर अनुगृहीत किया है इन सब विद्वानोके हम आभारी है।

स्व. श्रद्धेय पं. कैलाशचन्द्रजी सि. शा. बनारसद्वारा अनुवादित आलापद्धति की सहायता से विशेषार्थ लिखने में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगमता रही इसके लिये पंडितजीके उपकार मानते है ।

आदरणीय पं. नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर शास्त्री इस प्रकाशन प्रेरणा स्रोत हैं वे जिनवाणी की निःस्वार्थ सेवा करनेवाले तत्त्वज्ञ सुलझे विद्वान है । आपने इसके संशोधनादि का कार्य किया है । प. राजमलजी भोपाल विशेष रूपसे विस्तारसे विशेषार्थ लिखने के लिये प्रेरित करते रहे, अतः इन दोनो विद्वानोके प्रति हृदयसे कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं ।

अनुवाद आदिमें कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो विद्वान बन्धु सूचित करने की कृपा करें ।

जिनवाणी सेवक–

ब्र. भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री

श्री महावीर स्वाध्याय सदन
बांदरी (सागर) म. प्र.
दि. १७।८।८९
रक्षाबन्धन पूर्णिमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

१)	द्रव्यअधिकार	२
२)	गुणाधिकार	५
३)	पर्याय–अधिकार	११
४)	स्वभाव अधिकार	२५
५)	प्रमाण अधिकार	३२
६)	नय अधिकार	३८
७)	गुणव्युत्पत्ति अधिकार	६४
८)	पर्याय व्युत्पत्ति अधिकार	७२
९)	स्वभाव व्युत्पत्ति अधिकार	७३
१०)	एकांतपक्षदोष अधिकार	८४
११)	नय योजना अधिकार	९८
१२)	प्रमाणलक्षण–भेद	१०८
१३)	नय के स्वरुप और भेद	११०
१४)	अथ निक्षेप व्युत्पत्ति	१११
१५)	द्रव्यार्थिक नय भेद व्युत्पत्ति	१११
१६)	पर्यायार्थिक नय व्युत्पत्ति	११३
१७)	नैगमादिनय व्युत्पत्ति	११४
१८)	निश्चय–व्यवहार नय भेद	११६
१९)	अध्यात्मनय भेद	१२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धीपत्रक

आलापपद्धति

पृष्ठ	ओळ	अशुद्ध	शुद्ध
१	१०	मत्वा	नत्वा
१०	२२	स्वसंवेदन	अर्थसंवेदन
१२	१	वाग्गभ्यो	वाग्गम्यो
१२	२	चार्य	चार्थ
१२	५	सयय	समय
१२	१८	—	कर्मोपाधि सहित परिणमन विभाव अर्थ पर्याय
१३	१३	अगुरुलघुणा	अगुरुलघुगुणा
१५	१४	योनय	योनयः ।
१६	८	व्यजन	व्यंजन
१७	८	अकृतिम	अकृत्रिम
२०	११	धर्मको द्वय	धर्मद्वयको
२२	२१	व्यतिरेकि:	व्यतिरेकिणः
२९	२१	रूपन	रूप न
३०	१	स्वभासे	स्वभावसे
३५	१५	अव्यय	अवाय
३७	२	भेद	भेदः
३८	१२	उच्चते	उच्यन्ते
४४	६	यधा	यथा
४६	२०	मेवदि:	मेवादिः
४८	४	गौवेण	गौणत्वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	ओळ	अशुद्ध	शुद्ध
५०	२	–	**नैगमः त्रेधा । भूतभाविवर्तमान-काल भेदात् ॥ ६४ ॥**
५३	१९	औयुक्त	और मुक्त
५४	२०	जाव	जीव
६३	१६	हेमाभारण	हेम–आभरण
६६	७	अन्यय	अन्वय
६८	१०	णगुरुलघुगुणाः	अगुरुलघुगुणाः ।
७०	१८	हीना	होना
७२	८	अल्तित्व	अस्तित्व
७३	११	विभव	विभाव
७५	१२	गप	गुण
८२	१५	सावर	सागर
८३	१७	लोन	लोक
८४	१०	दुर्यये	दुर्णये
८५	२	धारण	कारण
८७	२०	अणि	अपि
९०	१४	विषययनं	विषयगमनं
९१	१	रुपये	रुपसे
९२	१४	अनेकाना	अनेकान्त
९३	१४	वयणां	वयणं
९३	१५	वायणादो	वयणादो
९५	१	प्रदेशसा	प्रदेशस्य
९६	१७	जैसा	वैसा
९७	१९	निश्चयसे	निश्चयनयसे
९८	७	सिद्धार्थं	सिध्द्यर्थं
९८	१६	आप	अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	ओळ	अशुद्ध	शुद्ध
१०३	१६	स्वभाव	स्वभावः ।
१०५	१०	ऋतुत्वात्	ऋजुत्वात्
„	१०	च्या	च
„	१४	गुण	स्कंध
१०६	१४	अमूतिक	अमूर्तिक
„	१८	पुद्लपणु	पुद्गलाणु
१०७	३	कधंचित्	कथंचित्
१०८	३	अशुद्ध द्रव्यार्थिकभेद	**अशुद्ध स्वभाव ॥१७५॥**
११२	१०	स्वद्रव्यादितुष्टय द्वारा अस्तित्वका ग्रहण करना	
११३	४	वस्तुमें परद्रव्यचतुष्टय का नास्तित्व का ग्रहण करना	
११४	१५	**(१७) नैगमादिनय व्युत्पत्ति**	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री वीतरागाय नमः

आलाप पद्धति

(आचार्य देवसेनकृत-हिन्दी भाषानुवादसहित)

मंगलाचरण

जो वीतरागी सर्वदर्शी बन गये स्वाधीन है।
सर्वज्ञ होकर भी सदा आनंदरसमे लीन है।
निःस्वार्थ हो जो जगत्जनका कर रहे उपकार है।
उन वर्धमान जिनेशको नित वंदना शतवार है ॥१।

ग्रंथकारकृत मंगलाचरण

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च।
पर्यायाणां विशेषेण मत्वा वीर जिनेश्वरं ॥ १ ॥

अर्थ- भगवान अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामीको नमस्कार कर द्रव्योंका, उनके गुणोंका, उनके स्वभावोंका तथा उनके परिवर्तनशील पर्यायधर्मोंका विस्तार रूपसे मैं (ग्रंथकार देवसेन आचार्य) वर्णन करता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ विषय प्रतिज्ञा

आलाप पध्दतिर्वचनरचना, अनुक्रमेण नय-चक्रस्योपरि उच्यते ॥ १ ॥

अर्थ– वचनोंकी रचनारूप अनुक्रमसे प्राकृत ग्रंथ नयचक्र समूह इसके आधारसे यह आलाप पध्दति नामक ग्रंथ रचनेकी विषय प्रतिज्ञा ग्रंथकार आचार्य देवसेन सूचित करते है।

सा च किमर्थम् ? ॥ २ ॥

प्रश्न– यह आलाप पध्दति ग्रंथकी रचना किस प्रयोजनसे की जा रही है ?

द्रव्यलक्षणसिध्द्यर्थं, स्वभावसिध्द्यर्थं च ॥ ३ ॥

उत्तर– द्रव्यके लक्षणकी सिद्धिकेलिये, तथा द्रव्यके स्वभावकी सिद्धिके लिय यह विवेचन करते है।

द्रव्याणि कानि ? ॥ ४ ॥

प्रश्न– द्रव्य किसे कहते है और द्रव्य कितने है और कौन कौनसे है ?

जीव–पुद्गल–धर्म–अधर्म–आकाश–काल–द्रव्याणि ॥ ५ ॥

उत्तर– द्रव्य छह है। १ जीव २ पुद्गल ३ धर्म ४ अधर्म ५ आकाश ६ काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत् द्रव्यलक्षणम् ॥ ६ ॥ उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त सत् ॥ ७ ॥

सत् द्रव्यका लक्षण है। जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इनसे युक्त है वह सत् है।

विशेषार्थ- द्रव्यका सामान्य लक्षण सत् हैं। जो अस्तित्व धर्मसे युक्त सहित है अर्थात जिसमे पूर्वपर्यायका व्यय नवीन पर्यायका उत्पाद रूप परिणमन प्रतिसमय होता है। तथा उत्पाद व्यय परिणमन होते हुये भी जो गुण शक्ति स्वभावरूपसे सदा ध्रुव शाश्वत रहते है उनको द्रव्य कहते है। ये तीनो द्रव्यसे न भिन्न है, न भिन्न भिन्न समयमे होते है। इस लोकमे द्रव्य छह प्रकारके होते है। जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश, काल

जीव- जीवका लक्षण चेतना उपयोग है। जो द्रव्य अपनेको तथा अन्य सब द्रव्योंको जानता है, देखता है, उसे जीव कहते है।

पुद्गल- जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणोंसे युक्त रूपी पदार्थ है वह पुद्गल द्रव्य है। जो इंद्रियोंसे देखे जाते है, ग्रहण किये जाते है, वे सब स्थूल पुद्गल स्कंध है। परमाणु या सूक्ष्म स्कंध इंद्रियोंके विषय नही होते है।

धर्म- जो गतिमान जीव और पुद्गलको गमन क्रियामे सहायक निमित्त होता है, उसे धर्म द्रव्य कहते है।

अधर्म- जो स्थितिमान् जीव पुद्गलको स्थिर होनेमे सहायक निमित्त होता है उसे अधर्म द्रव्य कहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकाश– जो जीवादि सब द्रव्योंको अवकाश देनेमे सहायक निमित्त है, उसे आकाश द्रव्य कहते है ।

काल– जो जीवादि सब द्रव्योंके प्रतिसमय पर्यायरूपसे परिणमनमे सहायक निमित्त हैं, उसे काल द्रव्य कहते है ।

द्रव्यका लक्षण सत् अस्तित्वधर्म है । वह अस्तित्व, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीन अंशधर्मोसे सहित है ।

उत्पाद– परिवर्तनशील द्रव्यमे अंतरंग निमित्त (उपादान शक्ति) बहिरंग निमित्त तदनुकूल अन्य द्रव्यका संयोग निमित्त मात्र इसके कारण अनंतर उत्तर नवीन पर्यायका उत्पन्न होना यह उत्पाद है ।

व्यय– द्रव्यकी पूर्व अवस्थाका नाश (अभाव) होना व्यय है ।

ध्रौव्य– परिणमनशील द्रव्यके पूर्वोत्तर पर्यायोंका व्यय उत्पाद होते हुये द्रव्यमे पारिणामिक स्वभावरूप ध्रुवस्वभाव धर्मोका अन्वय रूपसे शाश्वत रहना उत्पाद नाश न होना ध्रौव्यधर्म कहलाता है ।

पूर्व अनंतर क्रमबद्ध नियत पर्यायका व्यय यह उत्तर अनंतर नियत पर्यायके उत्पादका कारण होता है, इसलिये वस्तुमे कार्य कारण रूपसे प्रतिसमय होनेवाली उत्पाद व्यय रूप परिणमनरूप अर्थक्रिया नियत क्रमबद्ध है ।

इति द्रव्याधिकारः ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ गुणाधिकारः

लक्षणानि कानि ।। ८ ।।

प्रश्न– लक्षण किसे कहते है ? द्रव्यके लक्षण कौनसे है ?

उत्तर– **व्यतिकीर्ण वस्तुव्यावृत्ति हेतुः लक्षणं ।**

परस्पर मिली हुई वस्तुओमेसे विवक्षित वस्तुको पृथक् करनेवाला जो हेतु उसे लक्षण कहते है ।

शक्ति, लक्षण, विशेष, धर्म, स्वरूप, गुण, स्वभाव, प्रकृति, शील आकृति ये सब गुणवाचक एकार्थवाचक है ।

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशवत्वं, चेतनत्वं, अचेतनत्वं, मूर्तत्वं, अमूर्तत्वं इति द्रव्याणां दश सामान्य गुणाः ।। ९ ।।

१ अस्तित्व २ वस्तुत्व ३ द्रव्यत्व ४ प्रमेयत्व ५ अगुरुलघुत्व ६ प्रदेशवत्व ७ चेतनत्व ८ अचेतनत्व ९ मूर्तत्व १० अमूर्तत्व ये द्रव्योंके सामान्य गुण है ।

विशेषार्थ– सहभुवः अन्वयिनो गुणाः । द्रव्योंमे जो एकसाथ रहते है, इसलिये गुणोंको सहभू अथवा अक्रमभावी कहते है ।

द्रव्य अनेकान्तात्मक, परस्पर विरोधी सामान्य विशेषात्मक सत् असत् आत्मक, एक अनेकात्मक, नित्य अनित्यात्मक भेद अभेदात्मक, तत् अतत् स्वरूप, इस प्रकार परस्पर विरोधी धर्म युगपत् एकसाथ अविरोध अविनाभावरूपसे रहते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब द्रव्योंमे समानरूपसे पाये जाते है उनको सामान्य गुण कहते है ।

१ **अस्तित्व**– सदा सर्वकाल द्रव्यका सत् रूपसे रहना यह अस्तित्व गुण है ।

२ **वस्तुत्व**– वस्तुका सामान्य विशेषात्मक द्रव्यपर्यायात्मक होना वस्तुत्व गुण है ।

३ **द्रव्यत्व**– द्रव्यका प्रति समय अपने गुणपर्यायोंमे अन्वयरूपसे परिणमना यह द्रव्यत्व गुण है ।

४ **प्रमेयत्व** वस्तु ज्ञेयाकार रूपसे ज्ञानका विषय बनना यह प्रमेयत्व गुण है ।

५ **अगुरुलघुत्व**– प्रत्येक गुणके अविभागप्रतिच्छेदोमे षट्–स्थान पतित हानि–वृद्धि होते हुये भी वस्तु सदा अपने स्वरूपमे प्रतिष्ठित रहना एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यरूप न होना एक गुणका दूसरे गुणरूप न होना द्रव्यके गुण बिखरकर पृथक् न होना कम जादा न होना यह अगुरुलघुत्व गुण है ।

६ **प्रदेशवत्व**– द्रव्य सदा अपने स्वक्षेत्र नियत प्रदेश अवयवोंमे रहना यह प्रदेशवत्व गुण है ।

एकप्रदेशी पुद्गल परमाणु कालाणु निरवयव निरंश होते है । बहुप्रदेशी जीव धर्म अधर्म आकाश द्रव्य ये सावयव कहे जाते है ।

पुद्गल स्कंध उपचारसे बहुप्रदेशी सावयव कहे जाते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्कंधके परमाणुओंको उपचारसे प्रदेश कहकर बहुप्रदेशी कहा गया है।

७ **चेतनत्व**– अनेक जीवोमे समानरूपसें रहनेवाला चेतनत्व सामान्य गुण है

८ **अचेतनत्व**– पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इन द्रव्योमे समानरूपसे रहनेवाला अचेतनत्व सामान्य गुण है।

९ **मूर्तत्व**– अनेक पुद्गल परमाणुओमे समानरूपसे रहनेवाला मूर्तत्व सामान्य गुण है।

१० **अमूर्तत्व**– जीव धर्म अधर्म काल द्रव्योमे समान रहनेवाला अमूर्तत्व सामान्य गुण है।

प्रत्येकं अष्टौ अष्टौ सर्वेषाम् ॥ १० ॥

प्रत्येक द्रव्यमे अपने अपने आठ आठ सामान्य गुण रहते है।

१ जीवद्रव्यमे अस्तित्वादि छह ७ चेतनत्व ८ अमूर्तत्व (अचेतनत्व मूर्तत्व नही)

२ पुद्गल द्रव्यमे अस्तित्वादि छह ७ अचेतनत्व ८ रूपित्व (चेतनत्व अरूपित्व नहीं)

३ धर्म द्रव्यमे अस्तित्वादि ६ ७ अचेतनत्व ८ अरूपित्व (चेतनत्व रूपित्व नही)

४ अधर्म द्रव्यमे अस्तित्वादि छह ७ अचेतनत्व ८ अरूपित्व (चेतनत्व रूपित्व नहीं)

५ आकाश द्रव्यमे अस्तित्वादि छह ७ अचेतनत्व ८ अरूपित्व (चेतनत्व रूपित्व नही)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६ काल द्रव्यमे अस्तित्वादि छह ७ अचेतनत्व८ अरूपित्व चेतनत्व रूपित्व नही)

ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्याणि-स्पर्श-रस, गंध-वर्णाः, गतिहेतुत्वं, स्थितिहेतुत्वं, अवगाहनहेतुत्वं, परिणमन हेतुत्वं, चेतनत्वं, अचेतनत्वं, मूर्तत्व, अमूर्तत्वं च इति द्रव्याणां षोडश विशेष गुणाः ११

ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गति, हेतुत्व स्थिति हेतुत्वं, अवगाहन हेतुत्व परिणमन हेतुत्व चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व अमूर्तत्व ये सोलह विशेषगुण होते है ।

---

१ टीप ज्ञान- अर्थव्यवसायः ज्ञानं । साकार प्रतिभासः ज्ञान । विशेष प्रतिभास ज्ञानं ।

जाणइतिकालविसये दव्वगुणे पज्जये बहुभेये ।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणेत्ति णं बेंति । गो जीव. २९९

पदार्थोंके साकार ज्ञान को ज्ञान कहते है ।

२ टीप दर्शन- जं सामण्ण गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अत्थे दंसणमिदि भण्णदे समय । गो. जीव. ४८२

स्वव्यवसायः दर्शनं । सामान्यावलोकनं दर्शनम् ।

सामान्य प्रतिभास दर्शनं ।

पदार्थके सामान्य प्रतिभासको दर्शन कहते है ।

दर्शनं आत्मविनिश्चितिः ।

आत्माके निर्णयको श्रद्धाको रुचिको आत्मदर्शन अथवा स्वसंवेदन कहते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येकं जीव पुद्गलयोः षट् ॥ १२ ॥

प्रत्येक जीव तथा प्रत्येक पुद्गल परमाणु इनमे अपने अपने छह विशेष गुण होते है।

जीवमे- १ ज्ञान २ दर्शन ३ सुख ४ वीर्य ५ चेतनत्व ६ अमूर्तत्व ।

पुद्गलमे - १ स्पर्श २ रस ३ गंध ४ वर्ण ५ अचेतनत्व ६ अमूर्तत्व

इतरेषां प्रत्येकं त्रयो गुणाः ॥ १३ ॥

अन्य धर्मादि द्रव्योमे प्रत्येकमे अपने अपने तीन विशेष गुण होते है।

१ धर्म गति हेतुत्व अचेतनत्व अमूर्तत्व

२ अधर्म स्थिति हेतुत्व अचेतनत्व अमूर्तत्व

३ आकाश अवगाहन हेतुत्व अचेतनत्व अमूर्तत्व

४ काल परिणमन हेतुत्व अचेतनत्व अमूर्तत्व

अन्तस्थाः चत्वारो गुणाः स्वजाति अपेक्षया सामान्य गुणाः विजाति अपेक्षया ते एव विशेषगुणाः ॥ १४ ॥

अन्तके जो चार गुण- चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व वे अपनी अपनी स्वजाति अपेक्षासे सामान्य गुण कहलाते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। किन्तु विजाति अपेक्षासे वेही विशेष गुण कहलाते हैं। जैसे चेतनत्व यह गुण सब जीवोमे पाया जाता है। इसलिये जीव द्रव्यकी स्वजाति अपेक्षासे सामान्य गुण कहलाता है। किन्तु जीव द्रव्यके अतिरिक्त अन्य अजीव पांच द्रव्योंमे नही पाया जाता। अर्थात् अन्य पांच द्रव्य अचेतन है। इसलिये विजाति अपेक्षा वही चेतन गुण जीव द्रव्यका विशेष गुण कहलाता हैं।

इसी प्रकार मूर्तत्व गुण सब पुद्गल द्रव्योमे पाया जाता है। इसलिये वह पुद्गल द्रव्यकी स्वजाति अपेक्षासे सामान्य गुण है। किन्तु वह मूर्तत्व गुण पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त अन्य चेतन अचेतन पांच द्रव्योमे नही पाया जाता। इसलिये मूर्तत्व यह गुण विजाति अपेक्षा पुद्गल द्रव्यका विशेष गुण कहलाता है। तथा अचेतनत्व गुण पांच ही अचेतन द्रव्योमे पाया जाता है। इसलिये वह पांचो अचेतन द्रव्योकी जाति अपेक्षासे सामान्य गुण है। किन्तु वह अचेतनत्व गुण जीव द्रव्यमे नही पाया जाता।

टीप–जीवके विशेष गुण– ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य (शक्ति)

ज्ञानोपयोग ८ भेद– मति, श्रुत, अवधि, मनपर्यय, केवलज्ञान, कुमति कुश्रुत, कुअवधि

दर्शनोपयोग ४ भेद– चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शन

सुख २ भेद– इंद्रियजन्य सुख अतींद्रिय सुख

शक्ति २ भेद– क्षायोपशमिक शक्ति, क्षायिक शक्ति

दर्शन– अंतर्मुखप्रकाश स्वसंवेदन

ज्ञान– बहिर्मुखप्रकाश स्वसंवेदन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये विजाति द्रव्यकी अपेक्षासे इन अचेतन द्रव्योका वह अचेतनत्व गुण विशेष गुण कहलाता है। उसी प्रकार अमूर्तत्व गुण पुद्गल द्रव्यके विना अन्य पांचोहीं चेतन अचेतन द्रव्योमे पाया जाता है। इसलिये वह अमूर्तत्व गुण पांचोही अमूर्त द्रव्योंकी अपेक्षासे सामान्य गुण कहलाता है। किन्तु वह अमूर्तत्व गुण मूर्त पुद्गल द्रव्यमे नही पाया जाता। इसलिये विजाति द्रव्य अपेक्षासे वही अमूर्तत्व गुण पांचो अमूर्त द्रव्योंका विशेष गुण कहलाता है।

इति गुणाधिकार समाप्त

अथ पर्याय अधिकार

गुण विकाराः पर्यायाः । ते द्वेधा। अर्थ-व्यंजन-पर्याय-भेदात ॥ १५ ॥

अर्थ- द्रव्य तथा गुणोंके विकार परिणमनको पर्याय कहते है। पर्याय दो प्रकारके होते है। १ अर्थ पर्याय २ व्यंजन पर्याय।

१ अर्थपर्याय- गुणोंके विकारको परिणमनको गुणपर्याय अथवा अर्थपर्याय कहते है।

२ व्यंजनपर्याय- द्रव्यके विकारको परिणमनको द्रव्य-पर्याय अथवा व्यंजन पर्याय कहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तो व्यंजनपर्याय वाग्गभ्यो ऽनश्वरः । स्थिरः ।
सूक्ष्मः प्रतिक्षणध्वंसी पर्यायश्चार्थसंज्ञकः । ज्ञानार्णव ध ४५ ।

व्यंजनपर्याय, स्थूल, इंद्रियगोचर, शब्दगोचर कुछ काल तक स्थिर रहता है ।

अर्थपर्याय, सूक्ष्म ज्ञानगोचर, अवाग्गोचर प्रतिसयय क्षण-विध्वंसी होता है ।

अर्थपर्यायाः द्विविधाः स्वभाव विभाव भेदात् ॥ १६ ॥

अर्थपर्यायके २ भेद है । १ स्वभाव २ विभाव

१ स्वभाव सदृश परिणमन उसको स्वभाव पर्याय कहते है ।
२ स्वभाव विरुद्ध परिणमन उसको विभाव पर्याय कहते है ।

अन्य द्रव्यके साथ संयोग न होनेके कारण धर्म, अधर्म, आकाश, काल इनका स्वभाव परिणमन ही होता है । जीव और पुद्गल इनका संयोग होकर जो विजातीय परिणमन होता है वह विभाव अर्थ पर्याय है । दो तथा दोसे अधिक परमाणुओंका स्कंधरूप जो परिणमन होता है वह सजातीय विभाव अर्थपर्याय है । कर्मोपाधि रहित जो जीवका स्वभावसदृश परिणमन होता है वह स्वभाव अर्थपर्याय है ।

अगुरुलघु विकाराः स्वभाव पर्यायाः ते द्वादशधा । षट्स्थान पतित हानिवृद्धिरूपाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ अनन्तभागवृद्धिः २ असंख्यातभागवृद्धिः ३ संख्यातभागवृद्धिः ४ संख्यातगुणवृद्धिः ५ असंख्यातगुणवृद्धिः ६ अनन्तगुणवृद्धि। इति षट् वृद्धिः। १अनंतगुणहानिः २असंख्यातगुणहानिः ३ संख्यातगुणहानिः ४ संख्यातभागहानिः ५ असंख्यातभागहानिः ६ अनन्तभागहानिः। इति षट् हानि। एवं षड्वृद्धि षड्हानिरूपा ज्ञेया अगुरुलघुत्वशक्तिः ॥ १७ ॥

अगुरुलघु गुणपर्यायरूप स्वभावपर्याय १२ प्रकार

षट्स्थान पतित हानि वृद्धिरूप है। प्रत्येक वृद्धि अंगुलके असंख्यात बार होने पर आगेकी वृद्धि होती है। ऐसी वृद्धि हानि क्रमशः होती है।

टीप– अगुरुलघुणा अणंता समयं समयं समुब्भवा जे वि।
दव्वाणं ते भणिया सहावगुणपज्जया जाण ॥
स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुगुणषड्हानिवृद्धिरूपाः सर्वद्रव्याणां साधारणाः ॥
सूक्ष्माः अवाग्गोचराः प्रतिक्षणं वर्तमानाः आगमप्रमाणात् अभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः ॥
सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिना ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभाव अर्थपर्यायाः षड्विधाः। मिथ्यात्व-कषाय-राग-द्वेष-पुण्य-पापरूपाः अध्यवसायाः १८

संसारी जीवद्रव्यके विभाव अर्थपर्याय छह प्रकारके है। १ मिथ्यात्व २ कषाय ३ राग ४ द्वेष ५ पुण्य ६ पापरूप अध्यवसानभाव ॥

विशेषार्थ– जो पर्याये परसापेक्ष गुणविघातक कर्मके संयोग निमित्त षट् स्थान पतित हानिवृद्धि रूप गुणोंके लक्षण विरुद्ध परिणमित होता है उनको विभाव अर्थ पर्याय कहते है। मोहनीय कर्मके उदयके कारण आत्माके गुणोमे विपरीतता आती है। दर्शन मोहके कारण आत्माके सम्यग्दर्शन गुणमे जो विपरीत श्रद्धान होता है उसको मिथ्यात्व कहते है। चारित्र मोहके निमित्त संसारी जीवके चारित्रगुणमे जो विपरीतता आती है उससे जो कषाय परिणाम–रागद्वेष परिणाम तथा शुद्धोपयोगके विपरीत अशुद्धोपयोगरूप पुण्य–पापरूप अध्यवसान भाव ये संसारी जीवके विभाव अर्थपर्याय कहे जाते है।

अशुद्ध अर्थपर्यायाः जीवस्य षट्स्थान गत कषाय हानि–वृद्धि–विशुद्धि–संक्लेशरूप–शुभ–अशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्याः। (पंचास्तिकाय गाथा १६) जीवमे कषायोंकी षट्स्थान पतित हानि–वृद्धि होनेके कारण विशुद्धि संक्लेशरूप शुभ–अशुभ लेश्याओंके स्थानरूप अशुद्ध विभाव अर्थ पर्याय होते है।

पुद्गलस्य विभाव अर्थपर्यायाः द्वयणुकादिस्कंधेषु वर्णतिरादि परिणमनरूपाः। पुद्गलद्रव्यके द्वयणुकादि स्कंधोमे वर्ण–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णांतररूप जो अन्य अन्यवर्णादि परिणमन होता है वे विभाव अर्थ पर्याय है ।

इस प्रकार संसारी जीव और पुद्गल द्रव्योंमे ही अन्य द्रव्यसापेक्ष विभाव अर्थ पर्यायरूप परिणमन होता है। स्वभाव अर्थ पर्याय सब द्रव्योंमे होता है । सब गुणके गुणांशोमे स्वभाव-विभाव अर्थ पर्यायरूपसे अगुरुलघुगुणके निमित्तसे षट्स्थान पतित हानि वृद्धिरूप परिणमन होता रहता है । । इति अर्थ पर्यायाः ।

व्यंजनपर्यायाः ते द्विविधाः । स्वभाव विभाव भेदात् ॥ १९ ॥

गुणोंके समूहरूप द्रव्यके विकार को द्रव्यके आकाररूप परिणमनको व्यंजन पर्याय कहते है । वे व्यंजनपर्याय दो प्रकारके होते है । १ स्वभाव व्यंजन पर्याय २ विभाव व्यंजन पर्याय

विभावपर्यायाः चतुर्विधाः । नर नारकादि पर्यायाः । अथवा चतुरशीतिलक्षाः योनय ।२०।

संसारीजीवके विभाव व्यंजन पर्याय चार प्रकार है १ मनुष्यपर्याय, २ देव पर्याय, ३ तिर्यंच पर्याय, ४ नरकपर्याय अथवा भेद विस्तारसे ८४ लाख योनि भेद जीवके विभाव व्यंजन पर्याय है ।

विभाव गुणव्यंजनपर्यायाः मत्यादयः॥२१॥

मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान ये चार संसारी जीवके विभाव गुण व्यंजन पर्याय है । जो पर्याय स्थूल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचन गोचर कुछ काल स्थिर रहनेवाली है वे व्यंजन पर्याये होती है। जो सूक्ष्म वचन अगोचर प्रतिसमय नाशवान बदलनेवाले है वे अर्थ पर्याय है। संसारीजीवके ज्ञानगुणके कुमति कुश्रुत-कुअवधि मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय ये सात विभाव गुण व्यंजन पर्याये है। चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन ये संसारीजीवके दर्शन गुणके विभाव गुण व्यंजन पर्याय है। ये सब ज्ञानदर्शन गुणके क्षयोपशमिक भाव है इसलिये विभाव गुण पर्याय है।

स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्यायाः चरमशरीरात् किंचित् न्यूनसिद्धपर्यायाः ॥ २२ ॥

अंतिम शरीरसे किंचित् न्यून आकार सिद्धजीवोंके स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है। यह सिद्धपर्याय सादि होकर अनन्तकाल तक रहती है।

स्वभाव गुण व्यंजन पर्यायाः अनंतचतुष्टय रूपाः जीवस्य ॥ २३ ॥

मुक्त जीवके अनन्तज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुख अनन्त वीर्य ये स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय है।

ये स्वभाव पर्याय सादि अनन्त काल तक रहते है। ये क्षायिक भाव है।

१ ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे अनन्तज्ञान (केवलज्ञान पर्याय)
२ दर्शनावरण कर्मके क्षयसे अनन्त दर्शन (केवल दर्शन)
३ मोहनीय कर्मके क्षयसे अनन्त सुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ अंतराय कर्मके क्षयसे अनन्त वीर्य

ये कर्मोपाधि रहित चिरस्थायी होनेसे स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय होते है ।

पुद्गलस्य तु द्वयणुकादयः विभावद्रव्यव्यंजन पर्यायाः ॥ २४ ॥

पुद्गल द्रव्यके द्वयणुक, त्र्यणुक आदि स्कंधोको विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय कहते है । ये सादि सान्त, अनादि सान्त सादि अनन्त अनादि अनन्त (मेरू पर्वत आदि अकृतिम तथा लोकाकाश प्रमाण महास्कंध सूर्यादि विमानोंका पृथ्वीकायशरीर आदि)

रस-रसान्तर-गन्ध-गन्धान्तरादिः विभाव गुणव्यंजन पर्यायः ॥ २५ ॥

द्वयणुकादि विभाव पुद्गल स्कंधोमे एक वर्णसे अन्य वर्णांतर रूप एकरससे अन्यरसांतररूप एक गंधसे अन्य गंधांतर रूप एक स्पर्शसे अन्य स्पर्शांतर रूप होनेवाला जो परिणमन वह विभाव गुण व्यंजन पर्याय है । जैसे आमका हरा वर्ण पीला वर्ण होता है ।

अविभागी पुद्गल परमाणुः स्वभावद्रव्यः व्यंजन पर्यायः ॥ २६ ॥

शुद्ध पुद्गल द्रव्यका अविभागी जो पुद्गल परमाणु वह स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है ॥ जिसका फिरसे विभाग न होवे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे अविभागी अंशको परमाणु कहते है। वह परमाणु षट्कोन होता है। सूक्ष्म होता है। इंद्रियगोचर नही होता। जिसका विभाग नही होता ऐसे अविभागी अंशको परमाणु कहते है।

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंद्रिये गेज्झं।
जं दव्वं अविभागी तं परमाणुं विजाणाहि ॥

जिसका आदि, मध्य, अन्त, स्वयं अपना परमाणु रूप ही है। जो इंद्रिय द्वारा ग्राह्य नहीं है ऐसा जो अविभागी अंश उसको परमाणु जानो।

वर्ण-गंध-रसैकैक-अविरुद्ध स्पर्शद्वयं स्वभाव गुणव्यंजन पर्यायाः ॥ २७ ॥

परमाणुमें दो स्पर्श (स्निग्ध-रुक्ष इनमेसे कोई एक तथा शीत उष्णमेसे कोई एक, एक रस, एक गंध, एक वर्ण, ऐसे पांच गुण होते है। ये स्वभाव गुणव्यंजन पर्याय है। परमाणु अप्रदेशी एक प्रदेशी होता है। तथापि उसमे द्वयणुकादि स्कंधरूप होनेकी योग्यता है इसलिये उपचारसे वह बहुप्रदेशी कहा जाता है।

जो स्कंधरूप होनेकी योग्यता वह कारण परमाणु कहलाता है। जो स्कंधसे विभक्त अंतिम अंश वह कार्य परमाणु कहलाता है। परमाणु एक प्रदेशी होनेके कारण निश्चयसे निरंश निरवयव कहलाता है। परन्तु वह आकारसे षट्कोण होनेसे छह दिशासे छह परमाणुओंके साथ उसका संयोग होता है इसलिये वह उपचारसे सावयव कहा जाता है। परमाणुरूपसे सूक्ष्म है, स्कंधरूप होनेकी योग्यता है इसलिये कथंचित् स्कंध अपेक्षासे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थूल है। परमाणु अपेक्षासे नित्य है, स्कंध अपेक्षासे स्यात् अनित्य है। परमाणुसे शुद्ध अवस्था है, स्कंधरूपसे अशुद्ध अवस्था है। परमाणु द्रव्यरूप होनेसे द्रव्य पर्याय है। चिरकाल स्थायी रहता है। इसलिये व्यंजन पर्याय है। इसलिये परमाणुको स्वभाव द्रव्यव्यंजन पर्याय कहा है। तथा परमाणुके पांच गुणोंको (२ स्पर्श, १ गंध, १ रस, १ वर्ण.) स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय कहते है।

एयरस वण्ण गंध दो फासं सद्द कारणमसद्दं।
स्कंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं विजाणाहि ।। पंचास्तिकाय)

अनादि निधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणं।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवत् जले ।। १ ।।

धर्माधर्म नभः काला अर्थ पर्याय गोचराः।
व्यंजनेन तु संबद्धौ द्वौ अन्यौ जीव पुद्गलौ ।। २ ।।

अनादिनिधन विश्वमें छह द्रव्य अनादि निधन है। वे अपने अपने पर्याय रूपसे प्रतिक्षण परिणमन करते है। जिस प्रकार जलमे लहरे उछलती है, पश्चात् निमज्जित होती है। इनमेसे धर्म-अधर्म आकाश और काल ये चार द्रव्य सदा शुद्ध पर द्रव्यके साथ परस्पर संसर्ग न होनेके कारण इनमे केवल अर्थ पर्याय रूप गुणोका स्वभाव परिणमन होता है। अन्य द्रव्यके संपर्कसे होनेवाला विभाव व्यंजन पर्याय रूप परिणमन नहीं होता। जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमे अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय दोनो होती है। वैभाविक शक्ति के कारण विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय रूप तथा विभाव गुण व्यंजन पर्याय रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणमन होता है। उसीको प्रवचनसारमें अनेक द्रव्य पर्याय कहा है। वह परिणमन दो प्रकारका होता है।

१ विजातीय द्रव्य व्यंजन पर्याय २ सजातीय द्रव्य व्यंजन पर्याय

१। विजातीय जीव और पुद्गल द्रव्यके कर्म-नोकर्म के साथ विजातीय द्रव्यव्यंजन पर्याय रूप परिणमन होता है। वह नर-नारकादि पर्याय रूप चार प्रकारका विजातीय द्रव्यव्यंजन पर्याय है।

२) सजातीय- दो अथवा उससे अधिक संख्यात असंख्या अनंत परमाणुओंके स्निग्ध रूक्षस्वभावके कारण जो परस्पर संबंध होकर स्कन्धरूप परिणमन होता है वह सजातीय विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है।

३। विभाव गुण व्यंजन पर्याय- जीवके ज्ञानादि गुणोंका मति-ज्ञान आदि तथा रागादि शुभ अशुभ भाव परिणमन विजातीय गुण व्यंजन पर्याय है।

४) पुद्गलके विजातीय गुण पर्याय- द्वयणुकादि स्कंधरूप पुद्-गलद्रव्यके जो स्निग्ध रूक्ष शीत उष्ण स्पर्शादि गुणोंका परिणमन यह विभाव गुण पर्याय है।

उपज्जंति वियंति य भावा णियमेण पज्जयणयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं सदा अणुप्पण्णमविणट्ठं॥

(जय धवल पृ. २४०)

पदार्थ पर्यायार्थिक नयसे पर्याय रूपसे उत्पन्न होते है। और नष्ट होते है। परन्तु द्रव्यार्थिक नयसे द्रव्य सदा द्रव्य रूपसे ध्रुव रहता है। न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है॥

॥ इति पर्याय अधिकार ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यका लक्षण

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥ २७ ॥

गुण तथा पर्याय इनके समूहको द्रव्य कहते हैं । पहले द्रव्यका लक्षण ' सत् द्रव्य लक्षणम् ' उस प्रकार सत् द्रव्यलक्षण कहकर उस सत्का ' उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ' उत्पाद-व्यय ध्रौव्यसे युक्त उसको सत् कहा है । यहां गुण पर्याय समूहको द्रव्य कहा है । दोनों लक्षणोंमे शब्दभेद है । अर्थभेद नही है ।

द्रव्य सदा गुणरूपसे ध्रुव द्रव्यस्वभावरूप रहता है, अपरिणमन शील है तथा पर्यायरूपसे उत्पाद-व्ययरूप प्रतिसमय परिणमनशील है । द्रव्यको अनेकान्तात्मक, सामान्य-विशेष धर्मात्मक इस प्रकार परस्पर विरुद्ध धर्मको द्वय अविरोध सिद्ध करना यह अनेकान्त जैन शासनके अनेकान्तका मुख्य प्रयोजन है । द्रव्यको सामान्य विशेषात्मक, द्रव्य-गुण-पर्यायात्मक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक, सत्-असदात्मक, एक अनेकात्मक, नित्य-अनित्यात्मक, भेद-अभेदात्मक, तत्-अतदात्मक इस प्रकार परस्पर विरोधी उभय धर्मात्मक अनेकान्तात्मक कहा है । अर्थात द्रव्य द्रव्यार्थिकनयसे, सामान्यस्वरूप, गुणविशेषस्वरूप, ध्रुव सत्रूप, एकरूप, अभेदस्वरूप तत्स्वरूप, नित्यध्रुवस्वरूप है । तथा पर्यायार्थिकनयसे पर्यायविशेषस्वरूप, उत्पाद-व्ययस्वरूप, असत्रूप (क्षणिकसत्रूप) अनेकरूप, भेदस्वरूप, अतत्स्वरूप, अनित्य-अध्रुवरूप प्रतिसमय परिणमनशील है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार उभयनय विवक्षासे परस्पर विरोधी धर्मात्मक अनेकान्तात्मक द्रव्यका स्वरूप है।

गुण इति दव्व विहाणं दव्वविकारो हि पज्जयो भणिदो।
तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं ॥

अपने विवक्षित द्रव्यको दूसरे द्रव्यसे पृथक् रखना यह गुणोंका कार्य है। गुणरूप शक्ति विशेष अपने विवक्षित द्रव्यको दूसरे द्रव्यसे पृथक् रखते है। द्रव्यके विकारको परिणमनको पर्याय कहते है। गुण पर्यायोंके समूहका नाम ही द्रव्य है। अर्थात द्रव्य गुण पर्याय ये अभिन्न एक ही वस्तु है। गुण और पर्याय समूहका नाम द्रव्य है। द्रव्यका पर्यायरूपसे परिणमन करनेका जो शक्तिसामर्थ्य उसे गुण कहते है। प्रतिसमय जो द्रव्यका तथा प्रत्येक गुणका जो परिणमन उनको पर्याय कहते है। नियत पूर्व पर्याय विशिष्ट द्रव्य कारण कहलाता है। और नियत उत्तर पर्याय विशिष्ट द्रव्य कार्य होता है। इस प्रकार द्रव्यके पूर्वोत्तर पर्यायोंमें नियत कार्य कारण भाव होनेसे पर्यायोंका नियत क्रमवर्ती नियत क्रमबद्ध कहा है। प्रत्येक द्रव्यके गुण अपने सहभावी गुणोंके साथ युगपत् रहते है। इसलिये गुणोंको अक्रम अथवा सहभू कहा है। गुणोंका द्रव्यके साथ निरंतर अन्वय संबंध रहता है इसलिये गुणोंको (अन्वयिनो गुणाः) अन्वयी कहा है। परन्तु पर्याय नियत क्रमवर्ती है, एक पर्यायका दूसरे पर्यायके साथ व्यतिरेक पाया जाता है इसलिये (व्यतिरेकिः पर्यायाः) पर्यायोंको व्यतिरेकी नियत क्रमवर्ती (नियतंक्रमवर्तित्वात्) कहा है। इति द्रव्य गुण पर्याय वर्णन समाप्त ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ- जो पर्याय अन्य द्रव्यके संयोग संबंध के कारण परद्रव्यसापेक्ष होती है उसे विभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं। यह विभाव व्यंजन पर्याय रूप परिणमन केवल जीव और पुद्गल द्रव्य में ही होता है। क्योंकि जीव और कर्म नोकर्मरूप पुद्गल द्रव्य इनके परस्पर संश्लेष संबंध के कारण विजातीय विभाव व्यंजन पर्याय रूप परिणमन होता है। तथा दो अथवा अधिक परमाणुओं के स्निग्ध रूक्ष स्वभावके कारण परस्पर सजातीय विभाव व्यंजन पर्याय रूप परिणमन होता है। स्वभावसे विपरीत लक्षण परिणमन को विभाव व्यंजन पर्याय कहते है।

टीप- नियतक्रमवर्ती- पर्यायोंको नियत कार्य कारणभाव संबंधके कारण नियत क्रमबद्ध मानना यह वस्तुसंगत आगमसंगत युक्ति संगत है।

जो लोक ईश्वरके समान नियतिको दैव को कोई अपूर्व शक्ति मानकर नियतिके आधीन वस्तुका परिणमन होता है ऐसा मानकर पुरुषार्थ हीन प्रमादी स्वच्छंदी बनते है। उस नियतिवाद को आगममें मिथ्या नियतिवाद कहा है। परन्तु नियतक्रमबद्ध वाद यह उक्त मिथ्या नियति नहीं है। इस नियतक्रमबद्ध के साथ नियत पुरुषार्थ भी अविनाभावी रहता है। द्रव्यके स्वचतुष्टयमें नियतस्वद्रव्य नियतस्वक्षेत्र नियतस्वकाल (काललब्धि-भवितव्यता) नियतस्वभाव इनका अविनाभाव रहता है। प्रत्येक कार्य अपने स्वचतुष्टयमें होता है। इस प्रकार नियतक्रम बद्धपर्याय यह मिथ्या नियति न होकर सम्यक्नियतिवाद है वह सम्यक् पुरुषार्थ से अविनाभावी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याय का स्वभाव– विभाव परिणमन स्व-पर-सापेक्ष होता है पर्यायके २ भेद हैं। १ अर्थपर्याय २ व्यंजन पर्याय

अर्थ पर्याय– अर्थ पर्यायको ही गुण पर्याय कहते हैं। इसके २ भेद हैं। १ स्वभाव अर्थ पर्याय २ विभाव अर्थ पर्याय

१) स्वभाव अर्थ पर्याय– स्वभावके अनुरूप सदृश जो परिणमन वह स्वभाव अर्थ पर्याय है। यह स्वभाव अर्थ पर्यायरूप परिणमन जीवादिक सब द्रव्योंमें अपने अपने स्वभाव अनुरूप होता है। जैसे जीवका केवलज्ञान.

२) विभाव अर्थ पर्याय– केवल जीव और पुद्गल इनके गुणोंका वैभाविक शक्तिके कारण अन्य द्रव्यके संयोग पूर्वक स्वभाव विरुद्ध परिणमन उसे विभाव अर्थ पर्याय कहते हैं। जैसे जीवके मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिकज्ञान.

२) व्यंजन पर्याय- गुणोंके समूहरूप द्रव्यका जो परिणमन उसे व्यंजन पर्याय कहते हैं। इसके भी २ भेद हैं। : स्वभाव व्यंजन पर्याय २ विभाव व्यंजन पर्याय.

१) स्वभाव व्यंजन पर्याय - जो द्रव्यका पर निरपेक्ष स्वभाव साक्षेप परिणमन उसको स्वभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं।

जैसे जीवकी सिद्ध अवस्था पुद्गल की परमाणु स्वभाव व्यंजन पर्याय है।

२) विभाव व्यंजन पर्याय– दो द्रव्योंका संयोग निमित्त जो पर सापेक्ष द्रव्य पर्याय उसको विभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं।

जैसे जीवकी नर नारकादि पर्याय (विजातीय विभाव व्यंजन पर्याय) पुद्गलकी स्कंधरूपपर्याय । सजातीय विभाव व्यंजनपर्याय ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार जो गुण पर्यायोंका समूह उसे द्रव्य कहते है। अथवा जो सत्लक्षण है उसे द्रव्य कहते है। द्रव्य पर्यायरूपसे सदा उत्पाद व्ययरुप परिणमनशील स्थूल व्यक्त है। तथा गुण रूपसे द्रव्य सदा ध्रुव अपरिणमनशील शक्तिरूप सूक्ष्म है अव्यक्त है।

॥ इति पर्याय अधिकार ॥

स्वभाव अधिकार

स्वभावाः कथ्यन्ते ॥ २८ ॥

१ आस्ति स्वभावः २ नास्ति स्वभावः ३ नित्य स्वभावः ४ अनित्य स्वभावः ५ एक स्वभावः ६ अनेक स्वभावः ७ भेद स्वभावः ८ अभेद स्वभावः ९ भव्य स्वभावः १० अभव्य स्वभावः ११ परम स्वभावः

एते एकादश द्रव्याणां सामान्य स्वभावाः।

१ चेतन स्वभावः २ अचेतन स्वभावः ३ मूर्त स्वभावः ४ अमूर्त स्वभावः ५ एक प्रदेश स्वभावः ६ अनेक प्रदेश स्वभावः ७ विभाव स्वभावः ८ शुद्ध स्वभावः ९ अशुद्ध स्वभावः १० उपचरित स्वभावः

एते द्रव्याणां दश विशेष स्वभावाः ॥ २८ ॥

अर्थ द्रव्योंके ११ सामान्य स्वभाव है।

द्रव्योंके १० विशेष स्वभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यके मूल स्वतः सिद्ध स्वरूपको स्वभाव कहते है। तत्काल पर्याय युक्त अथवा वर्तमान पर्याययुक्त वस्तुको भाव कहते है।

प्रश्न– पहले गुणाधिकार का वर्णन किया है। अब यहां फिरसे स्वभाव अधिकार का वर्णन किया जा रहा है। इसमें क्या रहस्य है ?

उत्तर- जो गुण है वे गुणी में ही रहते है। परन्तु स्वभाव गुणमें भी रहता है और गुणीमें भी रहता है।

प्रश्न– गुण गुणीमें किस प्रकार रहते है ?

उत्तर– गुण गुणीका अभेद तादात्म्यसंबंध है। प्रत्येक गुण गुणीके सब भागोमें सब प्रदेशोंमे तथा त्रिकालवर्ती सब अवस्थाओंमें व्याप कर रहता है।

प्रश्न– स्वभाव गुण और गुणीमें किस प्रकार रहता है ?

उत्तर– गुण और गुणी अपने अपने गुणपर्यायरूप तथा द्रव्य पर्यायरूप परिणमन यही गुणोंका तथा द्रव्योंका स्वभाव है।

इस प्रकार गुण और स्वभावमें कथंचित् विशेषता है। इसलिये यह स्वभाव अधिकार पृथक् कहा गया है।

१) अस्ति स्वभाव– द्रव्य अपने स्वचतुष्टयसे सदा अस्ति स्वभाव है।

२) नास्ति स्वभाव– द्रव्य परद्रव्य चतुष्टयकी अपेक्षा सदा नास्ति है।

३) नित्य स्वभाव– द्रव्य ध्रुवरूपसे सदा नित्य स्वभाव है।

४) अनित्य स्वभाव– द्रव्य उत्पाद व्ययरूपसे प्रतिसमय परिणमन शील अनित्य स्वभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५) एक स्वभाव– द्रव्य अपने सब गुण पर्यायोंमें अखंड एक स्वभाव रहता है ।

६) अनेक स्वभाव– द्रव्य अनेक गुण पर्यायरूपसे अनेक स्वभाव है ।

७) भेद स्वभाव– द्रव्य गुण पर्याय रूपसे संज्ञाभेद स्वरूप भेद स्वभाव है ।

८) अभेद स्वभाव– द्रव्य द्रव्यरूपसे अभेद अखंड स्वभाव है ।

९) भव्य स्वभाव– द्रव्य आगामी पर्यायरूप परिणमने योग्य भव्य स्वभाव है ।

१०) अभव्य स्वभाव– द्रव्य पूर्व पर्याय रूपसे अथवा पर द्रव्य पर्याय रूप कदापि नही परिणमने योग्य अभव्य स्वभाव है ।

१०) परम स्वभाव– द्रव्य स्वतः सिद्ध पारिणामिक स्वभाव है ।

ये द्रव्योंके ११ सामान्य स्वभाव है ।

द्रव्योंके विशेष स्वभाव १० है ।

१) चेतन स्वभाव– जीव द्रव्य चैतन्य स्वभाव है ।

२) अचेतन स्वभाव– पुद्गल-धर्म-अधर्म आकाश काल ये पांच द्रव्य अचेतन स्वभाव है ।

३) मूर्त स्वभाव– पुद्गल द्रव्य मूर्त स्वभाव है । कर्मबद्ध जीव उपचारसे मूर्त है ।

४) अमूर्त स्वभाव– जीव-धर्म-अधर्म आकाश काल ये पांच द्रव्य अमूर्त स्वभाव है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५) एक प्रदेश स्वभाव– परमाणु-कालाणु एक प्रदेश स्वभाव है । (बहुप्रदेशी अखंड होनेसे एक प्रदेशी भी उपचारसे कहे है ।

६) अनेक प्रदेश स्वभाव– धर्म-अधर्म-आकाश जीव बहु-प्रदेशी अनेक प्रदेश स्वभाव है । पुद्गल स्कंध उप-चारसे बहुप्रदेशी है ।

७) विभाव स्वभाव– जीव और पुद्गल विभाव स्वभाव है।

८) शुद्ध स्वभाव– सब द्रव्य उपाधि निरपेक्ष स्वतः सिद्ध शुद्ध स्भाव है ।

९) अशुद्ध स्वभाव– पर सापेक्ष सोपाधिभाव स्वभाव विरुद्ध परिणाम अशुद्ध स्वभाव है ।

१०) उपचारित स्वभाव– एक द्रव्यके स्वभाव का अन्य द्रव्य सयोग वश दुसरे द्रव्यके स्वभावमें उपचार करना ।

जैसे कर्म संयोग वश जीवको मूर्त अचेतन कहना ।
आत्मज्ञ भगवान को सर्वज्ञका उपचार करना ।

जीव पुद्गलयोः एकविंशतिः ॥ २९ ॥

जीव और पुद्गलमें पूर्वोक्त सामान्य स्वभाव ११ और विशेष स्वभाव १० मिलकर एकीस स्वभाव होते है ।

विशेषार्थ– जीव द्रव्यमें भी २१ स्वभाव कहे इससे स्पष्ट होता है कि जीवमें अचेतन स्वभाव और मूर्त स्वभाव संसार अवस्थामें रागद्वेषादि भावोंको तथा १४ गुणस्थान १४ मार्गणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४ जीवसमास रूप अवस्थाओंको अचेतन भाव और मूर्त स्वभाव कहे गये हैं।

उसी प्रकार पुद्गलमें भी एक्कीस भाव कहे इससे स्पष्ट होता है कि कर्मरूप पुद्गल द्रव्यमें जीवके चेतन गुणोंका घात करनेकी शक्ति उसको उपचारसे चेतन तथा अमूर्त कहा है।

(समान शील व्यसनेषु सख्यं) इसी नीति नियमसे कर्मके साथ संबंध करनेके लिये जीवको कथंचित् अचेतन मूर्त बनना पडता है। तथा कर्मको कथंचित् चेतन तथा अमूर्त बनना पडता है। उसके विना जीव और कर्मका संश्लेष बन नही सकता।

प्रश्न– जीवमे चेतनत्व तथा अमूर्तत्व स्वभाव होनेपर अचेतनत्व तथा मर्तत्व कैसे संभव हो सकता है? तथा पुद्गल द्रव्यमे कर्ममे अचेतनत्व, मूर्तत्व स्वभाव होनेपर चेतनत्व, अमूर्तत्व स्वभाव कैसे संभव हो सकते है?

उत्तर– जिसकारण जीव और कर्मरूप पुद्गल द्रव्यका परस्पर संश्लेष संबंध होता है वह समानशील हुये विना बन नही सकता। 'समानशील व्यसनेषु सख्यं' ऐसा नीति नियम है।

आगममे जीवके गुणस्थानादि भावोंके अचेतनस्वभाव कहा है। इसलिये सात तत्वोंमे प्रमुखतासे जीवके अशुद्ध विभाव परिणमनको अजीवतत्व मूर्त कहा है। (बंधादो मुत्ति) तथा जीवमे ज्ञान दर्शनस्वभावको चेतन स्वभाव कहा है। अन्य अस्तित्वादि सामान्यधर्मको ज्ञानरूपन होनेसे अचेतन कहा हैं।

प्रमेयत्वादिकै र्धर्मैः अचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तत स्यात् चेतनाचेतनात्मकः॥ (स्वरूपसंबोधन२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव कथंचित् चेतन–अचेतनात्मक है। ज्ञानदर्शन स्वभावसे चेतनात्मक तथा प्रमेयत्वादि धर्मोसे कथंचित् अचेतनात्मक है। तथा पुद्गल द्रव्योंमे भी इसी प्रकार अचेतन, मूर्तत्वस्वभावके साथ चेतनत्व तथा अमूर्तत्व विभाव भाव कहे गये है।

का वि अपुव्वा दीसदि पुग्गलदव्वस्स एदिसी सत्ती।
केवलणाण सहावो विणासिदो जाई जीवस्स ॥
(कार्तिकेय अणुप्रेक्ष २११)

पुद्गल द्रव्यमे भी ऐसी अपूर्व शक्ति दिखाई देती है कि, जीवके केवलज्ञान स्वभावको आवरण डालनेवाला केवलज्ञानावरण कर्म कहा गया है।

असद्भूत व्यवहारेण कर्म नोकर्म णोरपि चेतनस्वभाव: ॥
(आलाप पद्धति सूत्र १६०)

जीवके पांच भावोंमे औदयिक भावमे अज्ञान भावको जीवका स्वतत्व कहा है। क्योंकि जीवका अज्ञानभाव ज्ञानावरण कर्मके उदयमे होता है।

जीवस्य असद्भूत व्यवहारेण अचेतन स्वभाव:
(आलाप पद्धति सूत्र १६२)

इस प्रकार असद्भूत व्यवहार नयसे जीवमे अचेतनस्वभाव कहा गया है।

जीवस्य अपि असद्भूत व्यवहारेण मूर्तस्वभाव:
(आलाप पद्धति १६४)

असद्भूत व्यवहार नयसे जीवको कर्मबद्ध अवस्थामे मूर्त स्वभाव कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतनस्वभावः मूर्तस्वभावः विभाव स्वभावः अशुद्ध स्वभावः उपचरित्तस्वभावः एतैर्विना त्रयाणां (धर्म-अधर्म-आकाश) द्रव्याणां षोडश स्वभावाः सन्ति ॥ ३० ॥

उक्त एक्कीस स्वभावोंमेसे चेतनस्वभाव, मूर्तस्वभाव, विभावस्वभाव अशुद्धस्वभाव, उपचरितस्वभाव छोडकर शेष १६ स्वभाव धर्म,अधर्म, आकाश इन तीन द्रव्योंमे होते है ।

यद्यपि अचेतन द्रव्य पांच है तथापि इनमेसे पुद्गल द्रव्य जीवके चेतन गुणघातक होनेसे उसे कथंचित चेतन कहा है। इसलिये पुद्गल द्रव्यको छोडकर चार द्रव्य अचेतन कहे । तथा जीव द्रव्य अमूर्त है तथापि कर्मबद्ध होनेपर कथंचित मूर्त स्वभाव कहा जाता है इसलिये यहां धर्म, अधर्म, आकाश इन तीन द्रव्योंके उपरोक्त १६ स्वभाव कहे है ।

काल द्रव्य अचेतन है अमूर्त है तथापि बहूप्रदेशी स्वभाव नही है । इसलिये काल द्रव्यको छोडकर तीन द्रव्योंमे उपरोक्त १६ स्वभाव कहे है ।

तत्र बहुप्रदेशत्वं विना कालस्य पंचदश स्वभावाः ॥ ३१ ॥

कालद्रव्य एकप्रदेशी है, बहुप्रदेशी नही है । इसलिये बहु-प्रदेशत्व विना कालद्रव्यके १५ स्वभाव कहे है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी हैं । परन्तु वह स्कंधरूपसे बहुप्रदेशी बनता हैं । इसलिये उसको उपचारसे बहुप्रदेशी कहा है ।

एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण यकायो भणंति सव्वण्हू ।। द्रव्यसंग्रह२६

उपसंहार

एकविंशति भावाः स्युः जीव–पुद्गलयोर्मताः ।
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पंचदश स्मृताः ।।

इसप्रकार जीव और पुद्गलमे उपरोक्त एकवीसस्वभाव कहे है । धर्मादि तीन द्रव्योंमे १६ स्वभाव कहे है । काल द्रव्यमे १५ स्वभाव कहे है ।।

।। इति स्वभाव अधिकार ।।

प्रमाण अधिकार

ते कुत्तो ज्ञेयाः ।। ३२ ।।

प्रश्न- द्रव्य, गुण, पर्याय स्वभाव ये सब कैसे जाने जाते है ?

प्रमाण-नय-विवक्षातः ।। ३३ ।।

प्रमाण, नय तथा नयकी निक्षेपविवक्षाद्वारा जाने जाते है ।

(प्रमाण नयैरधिगमः)

प्रश्न– प्रमाण किसे कहते हैं ?

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं ।। ३४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्ज्ञानको प्रमाण कहते है । वस्तूके संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन तीन दोष विरहित समीचीन यथार्थ ज्ञानको सम्यग्ज्ञान प्रमाण ज्ञान कहते है । (सकलादेशग्राहिज्ञानं प्रमाणं) वस्तूके सामान्य विशेष आदि परस्पर विरोधी सकल अंशोंको ग्रहण करनेवाले ज्ञानको प्रमाण कहते है ।

तद् द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥ ३५ ॥

वह प्रमाणज्ञान दो प्रकारका है । १ प्रत्यक्ष २ परोक्ष प्रत्यक्षके दो भेद है । १ विकल प्रत्यक्ष २ सकल प्रत्यक्ष

अवधि-मनःपर्ययौ विकलप्रत्यक्षौ । ३६ ।

अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष (देश-प्रत्यक्ष) है ।

केवलं सकल प्रत्यक्षं ॥ ३७ ॥

केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है ।

मति-श्रुते परोक्षे ॥ ३८ ॥

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान है ।

विशेषार्थ- द्रव्य, गुण, पर्याय स्वभाव इन सबको जाननेका उपाय सम्यग्ज्ञान है । प्रमाण और नयज्ञान है ।

सकलादेश ग्राहि ज्ञानं प्रमाणं । विकलादेश ग्राहि ज्ञानं नयः ॥

वस्तूके सामान्य विशेषरूप परस्पर विरोधी संपूर्ण अंशोंको ग्रहण करनेवाला ज्ञान प्रमाणज्ञान कहलाता है । तथा वस्तूके एक एक अंशको मुख्यगौणरूप निक्षेप लक्षण विवक्षाको अभि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायको लेकर ग्रहण करनेवाले ज्ञानको नयज्ञान कहते है ।

प्रमाणज्ञानके ५ भेद है । १ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मनःपर्ययज्ञान ५ केवलज्ञान । इनमे पहले दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण है । । आद्ये परोक्षं) शेष तीन ज्ञान अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है (प्रत्यक्षमन्यत्)

प्रत्यक्ष- जो ज्ञान (अक्षं आत्मानं प्रतीत्य : इंद्रियोंकी अपेक्षा न रखते हुये आत्ममात्रसापेक्ष है । तथा (विशदं प्रत्यक्षं) स्पष्ट निर्मल प्रतिभास है उसे प्रत्यक्ष कहते है ।

परोक्ष- जो (पराणि अक्षाणि इंद्रियाणि) पर इंद्रियां और मन इनकी सहायतासे प्रतिभास होता है उसे परोक्ष ज्ञान कहते है ।

मति-श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण है । अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष (देश प्रत्यक्ष) है । तथा केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है ।

१ मतिज्ञान- पांच इंद्रियां और मन इनकी सहायतासे जो पदार्थका ज्ञान होता है वह मतिज्ञान है । इसके ४ भेद है । १ अवग्रह २ ईहा ३ अवाय ४ धारणा इस ज्ञानको उपचारसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है ।

१ अवग्रह- सामान्य प्रतिभास लक्षण दर्शन होनेपर जो पदार्थ विशेषका प्रथम ग्रहण उसको अवग्रह कहते है ।

जैसे प्रथम कोई पदार्थ है ऐसा सामान्य प्रतिभास दर्शन होनेपर सफेद वर्णवाला कोई पदार्थ है ऐसा जो पदार्थ विशेषका प्रथम ग्रहण वह अवग्रह ज्ञान है । इसके दो भेद है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ व्यंजनावग्रह २ अर्थावग्रह

१ व्यंजनावग्रह स्पर्शन, रसन, घ्राण, कर्णेंद्रिय द्वारा जो स्पृष्ट पदार्थोंका सामान्य अस्पष्ट प्रतिभास होता है उसे व्यंजनावग्रह कहते है। यह व्यंजनावग्रह चक्षु तथा मनके विना शेष-चार इंद्रियोंसे होता है।

अर्थावग्रह- पदार्थ विशेषकी अस्तिरूप प्रथम जो ज्ञान उसको अर्थावग्रह कहते है।

जैसे पहले स्पर्शनेंद्रिय द्वारा किसी पदार्थ के अस्तित्व मात्र का सामान्य सत्ता प्रतिभास लक्षण दर्शन हुआ। पश्चात् पदार्थके विशेष सत्ता मृदुस्पर्श का प्रतिभास व्यंजनावग्रह हुआ। पश्चात् मृदुस्पर्शवाला रस्सी समान गोल लंबायमान पदार्थ विशेषका प्रथम ग्रहण हुआ। चार इंद्रियों द्वारा प्रथम सामान्य प्रतिभास लक्षण दर्शन हुये विना व्यंजनावग्रह होता नहीं। व्यंजनावग्रह हुये विना विना अर्थावग्रह होता नहीं। अर्थावग्रह होनेपर ही ईहा अव्यय धारणा उत्तरोत्तर ज्ञान क्रम पूर्वक होते है।

चक्षु और मनके द्वारा सामान्य प्रतिभास रूप दर्शन होने-पर अर्थावग्रह होता है। चक्षु और मन के द्वारा व्यंजनावग्रह अस्पष्ट प्रतिभास होता नहीं।

ईहा- अर्थावग्रह होनेपर यह अमुक पदार्थ होना चाहिये इस प्रकार जिज्ञासा रूप ज्ञान उसको ईहा कहते है। (संशय दूर करनेवाला ज्ञान ईहा है।

३) अवाय- ईहा ज्ञान होनेपर यह दोरी ही है सर्प नही इस प्रकार निर्णयात्मक पदार्थ विशेष का ज्ञान अवाय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४) धारणा– अवाय ज्ञान होनेपर उस ज्ञानका कुछ काल तक क्षयोपशमानुसार विस्मरण न होनेका जो संस्कार ज्ञान वह धारणा ज्ञान है।

अवग्रह ईहा अवाय धारणाको लोक व्यवहारमें स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान कहते है इसलिये उपचारसे इसको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते है। वास्तवमें वह परोक्ष ज्ञान ही है।

मतिज्ञान इंद्रियां और मन इनकी सहायता पूर्वक जानता है। इसलिये परोक्ष है। मतिज्ञानसे जाने हुये पदार्थका विशेष ज्ञान अथवा उसके संबंधसे अन्य पदार्थका ज्ञान वह श्रुत ज्ञान है। श्रुत ज्ञान मतिपूर्वक होता है इसलिये वह परोक्ष है। अवधि और मनःपर्यय इंद्रियोंकी सहायताके विना ज्ञान मात्रसे रूपी पदार्थोंको द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादामें जानते है इसलिये देश प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान लोक अलोकवर्ती सब ज्ञेय पदार्थोंको उनके त्रिकालवर्ती भूत भविष्य वर्तमान सब पर्यायोंका युगपत् जानता है। इसलिये सकल प्रत्यक्ष है। पांचों ज्ञानोंमें मति अवधि मनःपर्यय केवल ये चार ज्ञान स्वार्थ है और प्रमाण रूप है। श्रुतज्ञान स्वार्थ और परार्थ रूप है प्रमाण रूप और नय रूप है। जो ज्ञानात्मक है स्वके लिये बोध करना यह जिसका प्रयोजन है वह स्वार्थ है। जो ज्ञान वचनात्मक है तथा परके लिये बोध कराना यह जिसका प्रयोजन है वह परार्थ है।

श्रुत ज्ञान आगमके माध्यमसे सब पदार्थोंको जान सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्वप्रकाशने ।
भेद साक्षात्-असाक्षात् च, ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ।।
(देवागम १०५)

स्याद्वाद नयज्ञान रूप श्रुतज्ञान और केवलज्ञान संपूर्ण ज्ञेय पदार्थोंको जानते है । उसमे भेद इतनाही है, कि केवलज्ञान साक्षात प्रत्यक्ष जानता है । स्यादाद नयरूप श्रुतज्ञान परोक्ष आगमके माध्यमसे जान सकता है । यदि उनमेसे कोई भी सर्व तत्वोंका प्रकाश न करे तो वह अवस्तुभूत कहे जावेगे । नयके विषयमे और एक बात 'वशेष ज्ञातव्य हैं कि, नय प्रमाणज्ञानसे कोई भिन्न वस्तु या प्रमेयवस्तु नहीं है । वह तो वस्तुगत सामान्य विशेषरूप अनेक धर्मोमिसे किस एक विवक्षित अंश–धर्मको मुख्य तथा अन्यअंशोको गौण अविवक्षित कर उसी विव–क्षित अंशके माध्यमसे वस्तुको जानता है । जैसे जब द्रव्यार्थिक नयसे जिसको आत्मा या जीव रूपसे ग्रहण किया था उसीको भेदरूप व्यवहार नयकी अपेक्षासे संसारी मुक्त अथवा संसारीके एकेंद्रिय द्वींद्रिय आदि भेद रूपसे ग्रहण करना यह सब नयज्ञान है।

द्रव्यार्थिकनयमे निश्चयनयसे स्वतः सिद्ध शुद्ध आत्मतत्वकी चेतनधर्मकी विवक्षा होती है इसलिये उसका चेतन आत्मारूपसे ग्रहण किया । लोकव्यवहारमे चेतनधर्म सूक्ष्म होनेसें दृष्टिगोचर नही है । संसारी जीव जो कर्म–नोकर्मके संयोगमे एकेंद्रियादि अवस्था धारण करता है, उस भेदरूप पर्यायधर्मसे व्यवहार किया जाता है । उस समय अन्य संयोगरूप भेद मुख्य विवक्षित होता है । मूल जीवतत्व गौण अविवक्षित होता है जीवतत्व न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चयनय रूप केवल द्रव्यरूप है। न केवल व्यवहार नयरूप पर्याय-भेद रूप है। जीव द्रव्य तो द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप अनेकान्तात्मक है। वह ज्ञानात्मक प्रमाण ज्ञानका विषय है। परन्तु वचनात्मक या ज्ञानात्मक नयज्ञानमे मुख्य गौणरूपसे पर्यायभेदरूप अवस्था रूपसेही ग्रहण या कथन किया जा सकता है।

इस प्रकार अनेकान्तात्मक वस्तुको अनेकान्तात्मक प्रमाण द्वारा तथा स्याद्वाद रूप नयज्ञान द्वारा जाननेकी या वचन द्वारा कथन करनेकी स्याद्वाद पद्धतिकाही दूसरा नाम आलाप पद्धति है।

॥ इति प्रमाण अधिकार समाप्त ॥

नय अधिकार

तदवयवाः नयाः ॥ ३९ ॥

नयभेदाः उच्चते ॥ ४० ॥

प्रमाणके अवयव नय है। नय के भेद कहे जाते है।

णिच्छय ववहार णया मूलमभेया णयाण सव्वाणं।
णिच्छय साहण हेदू दव्वय पज्जत्थिया मुणह ॥

(नयचक्र)

सब नयोंके मूल भेद दो है। १ निश्चय नय २ व्यवहारनय निश्चयनय की साधनाके कारणभूत हेतू दो नय है। १ द्रव्यार्थिक २ पर्यायार्थिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१ निश्चयनयः स्वाश्रितः द्रव्याश्रित अभेदाश्रितः।

निश्चयनय स्वाश्रित है। निज अखंड अभेद द्रव्य निश्चय नयका विषय है।

२ व्यवहार नयः पराश्रितः पर्यायाश्रितः भेदाश्रितः

व्यवहारनय पराश्रित है, अन्य द्रव्य तथा अपने पर्यायभेद व्यवहार नयका विषय है।

न खलु एकनयायत्ता देशना, किंतु उभयनयायत्ता।

(पंचास्तिकाय)

सर्वज्ञ भगवानका उपदेश एक नयाधीन न होकर उभय नयाधीन होता है।

द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिक नैगमः संग्रहः व्यवहारः ऋजुसूत्रः शब्दनयः समभिरूढः एवंभूतः इति नव नयाः स्मृताः ॥ ४१ ॥

नयोंके मूलभेद दो है। द्रव्यार्थिक २ पर्यायार्थिक। तथा उनके प्रभेद १ नैगम २ संग्रह ३ व्यवहार ४ ऋजुसूत्र ५ शब्दनय ६ समभिरूढ ७ एवंभूत

इस प्रकार नयोंके ९ भेद कहे है। द्रव्य जिसका मुख्य विषय प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है।

द्रव्यार्थिक नयके ३ भेद है। १ नैगम २ संग्रह ३ व्यवहार

पर्यायार्थिक नयके ४ भेद है। १ ऋजुसूत्र २ शब्द ३ समभिरूढ ४ एवंभूत.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सात नयोंमें पहले ४ नय नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋतुसूत्र ये अर्थनय है।

इनका विषय प्रधानतासे अर्थ पदार्थ होता है। शेष तीन नय शब्द समभिरूढ एवंभूत व्यंजननय अथवा शब्दनय कहे जाते है। इसमें व्यंजनकी शब्दकी प्रधानता होती है।

उपनयाश्च कथ्यन्ते ॥ ४२ ॥

नयानां समीपा उपनया: ॥ ४३ ॥

आगे उपनयोंका वर्णन करते हैं। जो नयोंके समीप है। अर्थात् नयके समान कुछ विवक्षा रखकर पदार्थोंका ज्ञान करानेमे कारण है उन्हे उपनय कहते है।

आत्मनः उपसमीपे प्रमाणादीनां वा तेषां उपसमीपे नयन्ति इति उपनया: ॥ (स नयचक्र)

जो नय आत्माके अथवा प्रमाणादि के उससमीप ले जाते है उन्हे उपनय कहते है। ये नय भी भिन्न भिन्न विवक्षासे वस्तु के अंशधर्मोको बतलाते है इसलिये इन्हे उपनय कहते है। ये भी प्रमाण के समान सम्यग्ज्ञान है।

सद्भूत व्यवहारः असद्भूत व्यवहारः उपचरित व्यवहारः इति उपनया: त्रेधा ।४४।

१ सद्भत व्यवहारनय २ असद्भूतव्यवहारनय ३ उपचरित व्यवहारनय इस प्रकार उपनयके तीन भेद है ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदानीं एतेषां भेदाः उच्यन्ते ॥ ४५ ॥

आगे इनके उपनयों भेद कहते है ॥

द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ॥ ४६ ॥

द्रव्यार्थिक नयके १० भेद है ॥

कर्मोपाधि[१] निरपेक्षः शुद्ध द्रव्यार्थिकः । यथा संसारी जीव सिद्ध सदृक् शुद्धात्मा । ४७ ।

उत्पाद-व्यय[२] --गौणत्वेन सत्ता ग्राहकः शुद्ध द्रव्यार्थिकः । यथा द्रव्यं नित्यं ॥ ४८ ॥

यद्यपि संसारी जीव कर्मोपाधि सहित है तथापि उसको गौणकर जीवके सदा विद्यमान कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध ध्रुव स्वभाव नयदृष्टीसे स्वतःसिद्ध आत्माका स्वभाव सिद्धजीवके समान शुद्ध होनेके कारण शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी मुख्य विवक्षा रखकर संसारी जीवको सिद्ध समान शुद्धात्मा कहा है

(सव्वेसुद्धा हु सुद्धणया)

---

१ कम्माणं मज्झगयं जीवं जो गहइ सिद्ध संकाशं ।
भण्णइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोपाधि णिरवेक्खो ॥
(नयचक्र १८)

२ उत्पाद व्ययं गौणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता ।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्ता गाहको समये ॥
(नयचक्र १९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि वस्तु सत् उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है तथापि उनमेंसे उत्पाद व्यय अंश धर्मोको गौण अविवक्षित कर वस्तूके ध्रुवत्व धर्मकी मुख्य विवक्षासे द्रव्यको नित्य ध्रुव टंकोत्कीर्ण कहना यह उत्पाद व्यय निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

भेद कल्पना निरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको, यथा– निजगुण--पर्याय--स्वभावात् द्रव्यं अभिन्नं ॥ ४९ ॥

भेद कल्पना निरपेक्ष गौण अविवक्षितकर शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे अभेद विवक्षासे जीव अपने गुण पर्याय स्वभाव भेदसे अभिन्न शुद्ध एक द्रव्य स्वरूप है।

गुणगुणियाइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेदं।
सुद्धो सो दव्वत्थो भेद वियप्पेण णिरवेक्खो ॥

(नयचक्र २०)

कर्मोपाधि–सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिको, यथा– क्रोधादि कर्मजभावः आत्मा ॥ ५० ॥

कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे आत्मा कर्मोदय जन्य क्रोधादिभाव सहित है ॥

भावेसु राग आदि भावो जीवम्मि जो दु जंपेदि।
सो हु असुद्धो उत्तो कम्माणोपाधिसावेक्खो ॥

(नयचक्र २१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पाद व्यय सापेक्षो अशुद्ध द्रव्यार्थिको, यथा– एकस्मिन् समये द्रव्यं उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मकं ।। ५१ ।।

उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है जैसे एकही समयमें द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है ।

उत्पाद व्ययरूप प्रत्येक पर्यायमें यह वही है, यह वही है इस प्रकार प्रत्येक पर्यायके साथ ध्रुव का अस्तित्व होनेसे ध्रुव को भी एक अंशपर्ययरूप कहकर अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा ।

उत्पाद वय विमिस्सा सत्ता गहिऊण भणदि तदियत्तं ।
दव्वस्स एग समये जो हु असुद्धो हवे विदियो ।।

(नयचक्र २२)

भेद–कल्पना–सापेक्षः अशुद्ध–द्रव्यार्थिको यथा– आत्मनो दर्शनज्ञानाद्यो गुणाः ।५२।

गुण गुणी भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय जैसे आत्माके दर्शन ज्ञानादि गुण है ।। ५२ ।।

ण वि णाणं, ण चरित्तं, ण दंसणं जाणगो सुद्धो ।।

(समयसार)

आत्मा न केवल ज्ञान स्वरूप है, न केवल दर्शन स्वरूप है, न केवल चारित्र स्वरूप है । किंतु दर्शन ज्ञान चारित्र यात्मक एक शुद्ध ज्ञायक स्वभाव है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेदे सदि संबंधं गुण गुणियाईण कुणइ जो दव्वे ।
सो वि असुद्धो दिट्ठो सहिओ सो भेद कप्पेण ॥
(नयचक्र २३)

अभेद द्रव्यमें गुण गुणी संबंध भेद रूपसे वर्णन करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अन्वयसापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यं ॥ ५३ ॥

संपूर्ण गुण-पर्याय स्वभाव जिसमे अंतर्भूत है ऐसे एक अन्वयसापेक्ष द्रव्यको ग्रहण करना यह अन्वयसापेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है । जैसे द्रव्य गुण-पर्याय-स्वभाववान है।

णिस्सेस सहावाणं अण्वयरूवेण दव्व दव्वेहि ।
दव्वठवणो हि जो सो अण्वयदव्वत्थिओ भणिदो ॥ (नयचक्र)
अशेष गुणपर्यायान् प्रत्येकं द्रव्यमब्रवीत् ।
सोऽन्वयो निश्चयो हेम यथा सत् कटकादिषु ॥
यः पर्यायादिकान् द्रव्यं ब्रूते स्वन्वयरूपतः ।
द्रव्यार्थिकःसोऽन्वयाख्यः प्रोच्यते नयवेदिभिः ॥
(सं. नयचक्र)

जो प्रत्येक द्रव्यके संपूर्ण गुणपर्यायोंको अन्वयरूपसे एक द्रव्य नामसे ग्रहण करना उसको अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय कहते है । आधारभूत द्रव्यके होनेपर ही गुणपर्याय उसके आधेय होते है इसलिये प्रत्येक गुण-पर्याय अपनें अपने एक द्रव्यके अन्वय सापेक्ष रहते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वद्रव्यादि–ग्राहक–द्रव्यार्थिको यथा–स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं अस्ति । ५४ ।

अस्तित्वं वस्तुरूपस्य स्वद्रव्यादि चतुष्टयात् ।
एवं यो वक्त्यभिप्रायं स्वादि ग्राहक निश्चयः ॥
(स नयचक्र)

स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभाव इस प्रकार स्वचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्यके अस्तित्व को ग्रहण करनेवाला नय स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है । द्रव्य स्वचतुष्टयसे सदा अस्तित्वरूप है । (आलाप पद्धति सूत्र १८८)

परद्रव्यादि-ग्राहक-द्रव्यार्थिको यथा पर–द्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति ॥ ५५ ॥

नास्तित्वं वस्तुरूपस्य परद्रव्याद्यपेक्षया ।
वांछितार्थेषु यो वक्ति परद्रव्याद्यपेक्षकः । (९ सं. नयचक्र)

विवक्षित पदार्थमे परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव इनकी अपेक्षासे सदा नास्ति है । इस प्रकार परद्रव्य सापेक्ष द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे विवक्षित वस्तुमे सदा नास्तित्व है ॥
(आलाप पद्धति सूत्र १९८)

परम-भाव-ग्राहक–द्रव्यार्थिको यथा ज्ञान–स्वरूपः आत्मा । अत्र अनेकस्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः ॥ ५६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मनिर्जनितो नैव नोत्पन्नस्तत्क्षयेन च ।
नयः परमभावस्य ग्राहको निश्चयो भवेत् ॥
(सं. नयचक्र १०)

गिण्हई दव्वसहावं असुद्ध सुद्धोपचार परिचत्तं ।
सो परमभाव ग्राहीं णायव्वो सिद्धिकामेण ॥ २६ ॥
(नयचक्र)

यद्यपि आत्मा अनन्त धर्मात्मक है। तथापि कर्मजनित औदायिकादि अशुध्दोपचार भाव तथा कर्मक्षयनिमित्तक शुध्दोपचाररूप क्षायिकभाव इनकी अपेक्षा न रखते हुये जो नय स्वतः सिध्द सहजज्ञानस्वभावरूप सहजशुध्द पारिणामिक भावको ग्रहण करता है उसे परमभाव ग्राहक शुध्द नय द्रव्यार्थिक कहते है ॥ (आलाप पध्दति सूत्र १९)

विशेषार्थ– शुध्द द्रव्यार्थिक नय परनिरपेक्ष वस्तुको अभेद स्वरूप ग्रहण करता है। और अशुध्द द्रव्यार्थिक नय परसापेक्ष भेदरूपसे अशुध्दताको ग्रहण करता है।

(इस प्रकार द्रव्यार्थिक नयके दशभेदोंका वर्णन समाप्त ॥)

अथ पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ॥ ५७ ॥

पर्यायार्थिक नयके छह भेद है।

अनादि-नित्य-पर्यायार्थिको यथा पुद्गल पर्यायो नित्यः मेवदिः ॥ ५८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकिट्ठिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया गिण्हई ।
जो सो अणाइणिच्चो जिणभणिओ पज्जयत्थिणओ ॥२७॥
पर्यायार्थी भवेन्नित्याऽनादि नित्यार्थ गोचरः ।

चंद्रार्कमेरू भू-शैल-लोकादेः प्रतिपादकः । सं. नयचक्र १

मेरू आदि पर्वत, सूर्व, चंद्र, आदि विमान पृथ्वी, पर्वत लोकाकाशप्रमाण महास्कंध ये सब अकृत्रिम अनाधिनिधन नित्य है। यह अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

सादि-नित्य-पर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायो नित्यः ॥ ५९ ॥

कम्मखयादुप्पणो अविणासी जो हु कारणाभावे ।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो सादि णिच्चणओ ॥ २०१ ॥
पर्यायार्थी भवेत् सादि व्यये सर्वस्य कर्मणः ।
उत्पन्न-सिद्धपर्याय-ग्राहको नित्यरूपकः ॥ २ ॥
आदत्ते पर्ययं नित्यं सादि च कर्मणः क्षयात् ।
स सादिनित्य पर्यायार्थि नामा नयः स्मृतः ॥ ८ ॥

शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की विवक्षा न करते हुये संपूर्ण कर्मका क्षय होनेपर जो चरम शरीराकार सिद्ध पर्याय उत्पन्न होती है वह सादि नित्य है ऐसा सादि नित्य पर्यायार्थिक नयसे कहा है।

सत्ता-गौणत्वेन उत्पाद-व्यय-ग्राहकस्वभावः अनित्य-अशुद्ध-पर्याय-ग्राहको यथा-समयं समयं प्रति पर्यायाःविनाशिनः ॥ ६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ता अमुक्खरुवे उत्पादवयं हि गिण्हए जो हु ।
सो दु सहाव अणिच्चो गाही खलु सुद्ध पज्जाओ ॥२०२॥
सत्ता गौणत्वातृ यो व्ययमुत्पादं च शुद्धमाचष्टे ।
सत्तागौत्वेणनोत्पादव्ययवाचकः स नयः ॥ ९ ॥

सत्ता को ध्रुवको गौण कर शुध्द केवल उत्पादव्यय को जो नय ग्रहण करता है वह अनित्य–शुध्द- पर्यायार्थिक नय है ।

सत्ता सापेक्ष स्वभावोऽनित्य-अशुद्धपर्यायार्थिको यथा– एकस्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः ।६१।

जो गहइ एक्क समये उप्पादवय धुवत्त संजुत्तं ।
सो सब्भाव अणिच्चो असुध्दओ पज्जयत्थिणओ ॥२०३॥
ध्रौव्योत्पाद व्ययग्राही कालेनैकेन यो नयः ।
स्वभावानित्यपर्यायग्राहकोऽशुध्द उच्यते ॥ १० ॥

एक ही समयमें जो नय द्रव्यके उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्त अनित्य अशुद्ध पर्याय को ग्रहण करता है उसे सत्ता सापेक्ष अनित्य अशुध्द पर्यायार्थिक नय कहते है ।

यहां सत्ता सामान्य विवक्षासे उत्पादव्यय ध्रौव्य रूप अनित्यता और भेद रूप अशुध्दता की अपेक्षासे इसको अनित्य अशुध्द पर्यायार्थिक नय कहा है ।

कर्मोपाधि निरपेक्षस्वभावो नित्यशुद्धपर्यायार्थिको, यथा, सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः ॥ ६२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देहीणं पज्जाया सुध्दा सिध्दाण भणइ सारित्था ।
जो सो अणिच्चसुध्दो पज्जयगाही हवे स णओ ॥ २०४ ॥
विभावनित्यशुध्दोऽयं पर्यायार्थी भवेदलं ।
संसारिजीवनिकायेषु सिध्दसादृश्य पर्ययः ॥ ५ ॥
पर्यायान् अंगिनां शुध्दान् सिध्दानामिव यो वदेत् ।
स्वभावनित्यशुध्दोऽसौ पर्याय ग्राहको नयः ॥ ११ ॥

कारण द्रव्य कारण गुण-कारण पर्याय ये नित्य शुद्ध रहते है । संसार अवस्थामें भी अशुद्ध कार्य पर्याय अवस्थाको गौण कर सदा नित्य शुद्ध रहनेवाला जो कारण पर्याय वह सिद्धोंके कार्य शुद्ध पर्यायके समान शुद्ध रहता है इस अपेक्षासे नित्य शुद्ध कारण पर्याय को ग्रहण करनेवाला कर्मोपाधि निरपेक्ष नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है ।

कर्मोपाधिसापेक्ष स्वभावोऽनित्य-अशुद्ध पर्यायार्थिकः । यथा- संसारिणां उत्पत्तिमरणे स्तः ॥ ६३ ॥

भणइ अणिच्चा सुद्धा चउगइ जीवाण पज्जया जो हु ।
होइ विभाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ ॥२०५॥
अशुद्ध नित्य पर्यायान् कर्मजान् विवृणोति यः ।
विभावानित्यपर्याय ग्राहकोऽशुद्ध संज्ञकः ॥ १२ ॥

जो नय संसारी जीवोंकी चतुर्गति भ्रमणरूप कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध अनित्य पर्यायोंको ग्रहण करता है वह कर्मोपाधि सापेक्ष अनित्य-अशुध्द पर्यायार्थिक नय है ।

(इस प्रकार पर्यायार्थिक नयके भेदोंका वर्णन समाप्त)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ आगम भाषासे द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक भेद वर्णन.

नैगम नयके भेद

नैगम नयके ३ भेद है १ भूत नैगम २ भावि नैगम, ३ वर्तमान नैगम.

अतीते वर्तमानआरोपणं यत्र स भूत-नैगमो ! यथा- अद्य दीपोत्सव दिने श्री वर्धमान स्वामी मोक्षं गतः ।। ६५ ।।

अतीतं सांप्रतं कृत्वा निर्वाणं त्वद्य योगिनः ।
एवं वदत्यभिप्रायो नैगमातीत वाचकः ।। १२ ।।

णिवित्तदव्व किरिया वट्टण काले दु जं समाचरणं ।
तं भूदणइगमणयं जह अज्ज णिव्वुइदिणं वीरे ।।३३।।

जो नय अतीत क्रियामे वर्तमान का आरोप कर आज दीपोत्सव दिनको श्री महावीर भगवान निर्वाण को प्राप्त हुये इस प्रकार यह भूत नैगम नय द्रव्यार्थिक नय है ।

भाविनि भूतवत् कथनं यत्रस भाविनैगमो यथा अर्हन् सिद्धः ।। ६६ ।।

भाविअवस्थाका भूतकालीन अवस्थाके समान कथन करना वह भाविनैगमनय है । जैसे अरहंत भगवानको आज सिद्ध कहना ।

णिप्पण्णमिव पजंपदि भावियकालं णरो अणिप्पण्णं ।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णई सो भावि णईगमोत्तिणओ । ३५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाविकालमे निष्पन्न होनेवाली क्रियाको वर्तमानमे निष्पन्न कहना यह भावी नैगम नय है ।

कर्तुमारब्धं, ईषत् निष्पन्नं, अनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते यत्र स वर्तमान नैगमो यथा– ओदनः पच्यते ।। ६७ ।।

प्रारंभ किये किसी कार्यको वह ईषत् निष्पन्न अधूरा बना हुआ हो अथवा आगे निष्पन्न होनेवाला हो वर्तमानमें निष्पन्न कहना यह वर्तमान नैगम नय है ।

पारद्धा जा किरिया पवणविहाणादि कहदि जो सिद्धा ।
लोए य पुच्छमाणं तं भणइ वट्टमाणणयं ।।

चावल पकाने को डाल रहा है उस समय किसने पूछा क्या करते हो तो कहना कि मै भात पका रहा हूं यह वर्तमान नैगम नय है ।।

उसी प्रकार कोई पुरुष जंगलमे लकडी तोडने जा रहा है । उसको किसीने पूछा कहां जाते हो । तो वह कहता है स्तंभ (खंबा) लानें जाता हूं अभी खंबा बना नही । परन्तु खंबा बनानेके संकल्पसे लकडीलानेको जा रहा है । इस प्रकार भावि पर्यायका वर्तमानमे संकल्प करना यह वर्तमान नैगमनय है ।

वास्तवमें चावल पकानेको डाल रहा है । चावल पक पर भात कहा जाता है । परन्तु भावी पर्यायका वर्तमानमे आरोप कर भात पका रहा हूं ऐसा कहना यह वर्तमान नैगम नय है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रहो द्वेधा ॥ ६८ ॥

संग्रहनयके दो भेद है।

सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्पर अविरोधीनि ॥ ६९ ॥

सामान्य संग्रह नय जैसे सत्‌रूपसे सब द्रव्य परस्पर अविरोधी है। सब द्रव्य द्रव्यरूपसे समान सत् महासत्‌को समान रूपसे धारण करनेवाले है ॥ (शुद्ध अभेद संग्रह)

विशेषसंग्रहो यथा सर्वे जीवाः परस्परं अविरोधिनः ॥ ७० ॥

विशेषसंग्रह– जैसे सब जीव जीवपनेसे परस्पर अविरोध है, समान है ॥ (अशुद्ध भेद संग्रह)

विशेषार्थ– सब द्रव्योंको एक द्रव्य जाति रूपसे ग्रहण करनेवाला नय संग्रह नय है।

उसमेंसे किसी एक के अंतर्गत भेदोंका संग्रह करनेवाला विशेष संग्रह नय है। जैसे सब द्रव्योंको सामान्य द्रव्य जाति अपेक्षा द्रव्य कहना यह सामान्य संग्रह नय है। तथा उसके अवांतर भेदोंको एक द्रव्य रूपसे ग्रहण करना यह विशेष संग्रह है।

जैसे– जिसको पहले सामान्य रूपसे द्रव्य रूपसे ग्रहण किया था उसीको अवांतर भेद रूप जीव रूपसे ग्रहण किया यह विशेष संग्रह नय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसी प्रकार व्यवहार नय के भी दो भेद है।

सामान्य संग्रह द्वारा गृहीत द्रव्य के जीव-अजीव ऐसे भेद करना यह सामान्य संग्रह व्यवहार है। तथा उसके अवांतर भेद रूपसे विशेष संग्रह द्वारा जीव रूपसे ग्रहण किया था उसके संसारी मुक्त इस प्रकार भेद करना यह विशेष संग्रह व्यवहार है। दो प्रकारके संग्रह को भेद करनेपर व्यवहार नय भी दो प्रकार होता है।

व्यवहारोपि द्वेधा ॥ ७१ ॥

व्यवहार नयके भी दो प्रकार है।

सामान्यसंग्रह भेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवाजीवाः ॥ ७१ ॥

सामान्य संग्रह कथनको भेदरूपसे कथन करना सामान्य संग्रह व्यवहार नय है, जैसे सामान्य संग्रहनयसे द्रव्यकहे थे उसके भेद कथन करना जैसे द्रव्य सामान्य अपेक्षा दो प्रकार है। जीव अजीव

विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा-- जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च ॥ ७२ ॥

विशेष संग्रह नय कथनका भेद व्यवहार करना जैसे जीव संसारी औयुक्त दो प्रकार है॥

ऋजुसूत्रोऽपि द्विविध ॥ ७३ ॥

ऋजुसूत्र नय के भी दो भेद है। १ स्थूल ऋजुसूत्र, २ सूक्ष्म ऋजुसूत्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म ऋजुसूत्रो यथा– एकसमयावस्थायी पर्यायः ।। ७४ ।।

सूक्ष्म ऋजुसूत्र नयका विषय एकसमयवर्ती पर्याय है।

जो एगसमयवट्टी गेहइ दव्वे धुवत्त पज्जाओ ।
सो रिजुसुत्तो सुहुमो सव्वं सद्दं जहा खणियं ।। २११ ।।
द्रव्ये गृण्हाति पर्यायं ध्रुवं समय मात्रिकं ।
ऋजुसूत्राभिधः सूक्ष्मः स सर्वं क्षणिकं यथा ।। १८ ।।

प्रतिसमयं प्रवर्तमानार्थं पर्याये वस्तु परिणमनं इति एषः सूक्ष्मः ऋजुसूत्रो भवति ।

अर्थं पर्याया पेक्षया समय मात्रं ।।

अथ पर्याय सूक्ष्म होती है और एकसमयावस्थायी है।

स्थूल ऋजुसूत्रो यथा– मनुष्यादिपर्यायाः तदायुः प्रमाण कालं तिष्ठन्ति ।। ७५ ।।

स्थूल ऋजुसूत्र नय– मनुष्यादि पर्याय अपने अपने आयु–प्रमाण काल तक रहते हैं।।

मणुयादि पज्जओ मणुसत्ति सग ट्ठिदीसु वट्टंतो ।
जो भणइ ताव कालं सो थूलो होइ रिजुसुत्तो ।। २१२ ।।
यो नरादिक पर्यायं स्वकीय स्थिति वर्तनं ।
तावत्कालं तथा चष्टे स्थूलाख्य ऋजुसूत्रकः ।। १९ ।।

नर नारकादि घट पटादि व्यंजन पर्यायेषु जाव पुद्गल–भिधान रूप वस्तूनि परिणतानि स्थूलऋजुसूत्र नयः ।। १६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यंजन पर्याया पेक्षया प्रारंभतः प्रारभ्य अवसानं यावत् भवतीति निश्चयः कर्तव्यः ॥

शब्दसमभिरूढएवंभूताः नयाः प्रत्येकं एकैकाः नयाः ॥ ७६ ॥

शब्द समभिरूढ एवंभूत ये नय प्रत्येक एक एक प्रकारके है। ये तीन नय शब्दनय (व्यंजन नय) कहे जाते है। इनमें शब्दकी प्रधानता रहती है ॥ शब्द भेदसे अर्थ भेद मानते है।

शब्दनयो-यथा–दाराः, भार्या, कलत्रं। जलं आपः ॥ ७७ ॥

जो नय शब्दव्याकरणा शास्त्र नियमके अनुसार विभक्ति प्रत्यय लगाकर व्युत्पन्न होता है उसको शब्द कहते है। शब्द विवक्षा प्रधानता लेकर जो प्रयोग किया जाता है उसे शब्दनय कहते है। शब्दके प्रयोगमे लिंग, संख्या साधन, काल, कारक पुरुष, उपग्रह आदिके जो व्यभिचार दोष आता है उसको दूर करता है।

जैसे दाराः यह पुल्लिंगमे है, भार्या यह शब्द स्त्रीलिंगमे है। कलत्रं यह शब्द नपुंसलिंगमे है। व्यवहारमे यद्यपि इन तीनो भिन्नलिंगी शब्दोंका एकार्थ स्त्रीवाचक होता है तथापि शब्दशास्त्र व्याकरण शास्त्रके अनुसार शब्दभेदके कारण अर्थभेद होनेसे उनका एकार्थ मानना व्यभिचार है। उसका निषेध कर भिन्न भिन्न शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ मानना यह शब्दनयका विषय है,

उसी प्रकार जलं यह नपुंसकलिंगमे एक वचनपद है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपः यह स्त्रीलिंगमे बहु वचन पद है इनका व्यवहारमे यद्यपि एकही अर्थ जल, पानी ऐसा किया जाता है तथादि शब्दशास्त्रके अनुसार यह व्यभिचार दोष मानकर उसका निषेध कर उन भिन्न भिन्न शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ मानना यह शब्दनय है।

लिंग संख्या, कारक, आदि अपेक्षासे जो भिन्न भिन्न शब्दोंका लोकव्यवहारमे एकार्थ माना जाता है वह शब्दशास्त्रकी दृष्टिसे व्यभिचार दोष आता है। उसका निषेध कर शब्दनय उन भिन्न भिन्न शब्दोंका भिन्न भिन्न अर्थ मानता है।

जो वट्टुणं ण मण्णइ एयत्थे भिण्णलिंग आदीणं।
सो सद्दणओ भणिओ पुस्साइयाण जहा। (प्रा. नयचक्र)

इस प्रकार प्राकृत नयचक्रमे भिन्न लिंग संख्या आदि भिन्न भिन्न शब्दोंका एकार्थ मानना शब्दनयकी दृष्टिसे व्यभिचार दोष मानकर उसका शब्दनय निषेध करता है।

टीप- (संस्कृत नयचक्रमें) पुष्यः तारका-नक्षत्रं, इति एकार्थो भवति। अथवा दाराः भार्या कलत्रं इति एकार्थो वति। इति कारणेन

लिंग-संख्या साधनादि अपेक्षा व्याभिचारं मुक्त्वा शब्दानुसारार्थ एकार्थः स्वीकर्तव्यः इति शब्दनय ॥ (संस्कृत नयचक्र)

इस प्रकार शब्दनयके विषयमें दो प्रकार मतभेद है।

धवला आदि ग्रंथोंमें (शब्दभेदे अर्थभेदः) भिन्नभिन्न शब्दोंका भिन्नभिन्न अर्थ मानना इसी को शब्द नय कहा है।

नोट- श्री महावीरजी संस्थान द्वारा प्रकाशित आलाप पद्धति ग्रंथमें दोनो प्रकारका मत उद्धृत किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समभिरूढो यथा– गौः पशुः ॥ ७८ ॥

समभिरूढ नय– जैसे गो यह अनेक अर्थवाचक होनेपर भी लोक व्यवहार रूढीमे वह पशु वाचक ग्रहण करना यह समभिरूढ नय है ॥

नानार्थं समभिरोहणात् समभिरूढः । अनेक अर्थोको गौण कर एकार्थ पर जो आरूढ होता है वह समभिरूढ नय है ॥

एवं भूतो नयो यथा इन्दतीति इन्द्रः । ७९ ।

शब्दके अर्थानुसार जब क्रिया परिणति करता है तब उसको उस शब्द द्वारा संबोधित करना यह एवंभूत नय है ॥

जैसे - जब इंद्रासन पर बैठकर विभूषित होता है तब उसे इंद्र कहना ।

विशेषार्थ– शब्द नय समभिरूढ नय एवं भूत नय ये पर्यायार्थिक नय सामान्यतः शब्दनय कहे जाते है । इनमें शब्दकी प्रधान विवक्षा रहती है । शब्दनय-लिंग-वचन-कारक आदि भेद विवक्षासे शब्दभेदसे अर्थभेदका ग्रहण करता है ।

जो नय लोकव्यवहार रूढ अर्थको ग्रहण करता है उसे समभिरूढ नय कहते है । तथा एवंभूत नय जिस समय शब्दको अर्थानुसार क्रिया होती है उसी समय उस शब्द द्वारा उसे संबोधित करता है । इनसे पहले नैगमादि चार नय अर्थनय कहे गये है । इस प्रकार नयोंके अट्ठाईस भेद कहे गये । द्रव्यार्थिक नयके १० भेद, पर्यायार्थिक नयके ६ भेद नैगमनयके काल भेदकी अपेक्षा वर्तमान, भूत, भविष्य भेदसे ३ भेद । संग्रह, व्यवहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋजुसूत्र इनके प्रत्येकके दो दो भेद तथा शब्दादि प्रत्येक एकएक इस प्रकार (१०+६+३+२+२+२+१+१+१) नयोंके कुल भेद जोड २८ भेद होते है।

उपनय भेदा उच्यन्ते ॥ ८० ॥

उपनय के भेद कहते है ॥

सद्भूत व्यवहारो द्विधा ॥ ८१ ॥

सद्भूत व्यवहार नय के दो प्रकार है।
१ शुद्ध सद्भूत २ अशुद्ध सद्भूत

शुद्ध सद्भूत व्यवहारो यथा— शुद्धगुण-गुणिनोः शुद्ध–पर्याय–पर्यायिणोः भेद-कथनम् ॥ ८२ ॥

कर्मोपाधिरहित स्वाभाविक गुण और स्वतः सिद्ध आत्मा गुणी तथा कर्मोपाधिरहित स्वभाव पर्याय और कर्मोपाधिरहित शुद्ध सिद्ध परमात्मा इनमें तादात्म्य लक्षण अभेद होते हुये संज्ञा लक्षण प्रयोजनादि भेद के कारण भेद कथन करना यह शुद्ध–सद्भूत व्यवहार नय है ॥

जैसे– केवलज्ञानी परमात्माके केवल ज्ञानादि गुण इस प्रकार गुण गुणीमें भेद कथन करना।

सिद्धपरमात्माके– सिद्ध पर्याय. इस प्रकार पर्याय पर्यायवान् आत्मामें भेद कथन करना. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुद्ध सद्भूत व्यवहारो यथा–अशुद्ध-गुण-गुणिनोः अशुद्ध–पर्याय–पर्यायिणोः भेदकथनम् ॥ ८३ ॥

कर्मोपाधि सापेक्ष मतिज्ञानादि विभाव गुण और संसारी अशुद्ध आत्मा तथा कर्मोपाधि सापेक्ष नर–नारकादि अशुद्ध पर्याय और संसारी आत्मा इनमें संज्ञा लक्षण प्रयोजनादि भेद विवक्षासे भेद कथन करना यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

विशेषार्थ– कर्मोपाधि रहित अवस्थामें आत्माके गुण और पर्याय शुद्ध प्रगट होते है इसलिये गुण गुणी तथा पर्याय–पर्यायवान् आत्मामें अभेद होते हुये भी संज्ञा लक्षण आदि भेद प्रयोजन वश भेदरूप कथन करना यह शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

तथा कर्मोपाधि सहित संसार अवस्थामें संसारी आत्माके मतिज्ञानादि विभाव गुण तथा नरनारकादि अशुद्ध पर्याय इनमें अभेद होते हुये भी संज्ञादि प्रयोजन वश भेद रूप कथन करना यह अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है। इस प्रकार सद्भूत व्यवहार नयके दो भेदोंका वर्णन किया।

असद्भूत व्यवहार नयः त्रेधा ॥ ८४ ॥

असद्भूत व्यवहार नयके तीन प्रकार है।

१) स्वजाति–असद्भूत व्यवहारो यथा–परमाणुः बहु प्रदेशी इति कथनं ॥ ८५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्निग्धत्वरुक्षत्व गुणके कारण दो अथवा दो से अधिक संख्यात-असंख्यात-अनंत परमाणु ओंकी जो बहुप्रदेश रूप स्कंध अवस्था उसको स्वजाति१ असद्भूत व्यवहार नय कहते है ।

२) विजाति असद्भूत व्यवहारो यथा- मूर्तं मतिज्ञानं मूर्तद्रव्येण जनितं ।। ८६ ।।

कर्मोपाधि सापेक्ष जीवके मतिज्ञानादि विभाव अवस्था परिणमन मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम निमित्त से होना यह विजाति२ असद्भूत व्यवहार नय है ।

३) स्वजाति-विजाति-असद्भूतव्यवहारो यथा- ज्ञेये जीवे-अजीवे ज्ञानमिति कथनं, ज्ञानस्य विषयत्वात् ।। ८७ ।।

टीप-१ अणुरेक प्रदेशोऽपि येनानेकप्रदेशकः ।
वाच्यो भवेत् असद्भूतो व्यवहारः स कथ्यते ।।
(सं नयचक्र पृ. ४७)

धटपटादि संबंध प्रबंधः परिणति विशेष कथकः ।

टीप-२ एकेंद्रियादि जीवान्त शरीराणि स्वरूपाणि ।।
शरीरमपि यो जीवं प्राणिनो वदति स्फुटं ।
असद्भूतो विजातीयो ज्ञातव्यो मुनिवाक्यतः ।। ८ ।।
मूर्तमेवमिति ज्ञानं कर्मणा जनितं यतः ।
यदि नैव भवेत् मूर्तं मूर्तेन स्खलितं कुतः ।।
(सं नयचक्र पृ. ४५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- स्वजातीय- अन्यजीव द्रव्य, विजातीय अन्य-अजीव द्रव्य इनमे अन्य द्रव्यादिका आरोपकर कथन करना यह स्वजाति-विजाति-असद्भूत व्यवहार नय हैं।

जैसे- ज्ञेय जीव पदार्थ या अजीव पदार्थ ज्ञानका विषय होनेके कारण यह जीवज्ञान यह अजीव ज्ञान- इस प्रकार कथन करना.

विशेषार्थ- अन्य प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोप करना यह असद्भूत व्यवहार नय हैं।

यह समारोप जब स्वजाति अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्यमें किया जाता है तब वह स्वजाति-असद्भूत व्यवहार नय कहलाता हैं।

परमाणु एक प्रदेशी होकर भी अन्य परमाणुओंके साथ संबद्ध होनेसे उसको बहुप्रदेशी कहा जाता है।

विजातीय द्रव्यका विजातीय द्रव्यादिकमें जो समारोप किया जाता है। वह विजाति-असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे- मतिज्ञान मूर्त इंद्रियादि के द्वारा होता है इसलिये मूर्त मतिज्ञान कहना। तथा अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका स्वजातीय और विजातीय दोनोमें समारोप किया जाता हैं वह स्वजाति-विजाति असद्भूत व्यवहार नय हैं। स्वजातीय जीव-विजातीय अजीव पदार्थ ज्ञानके विषय होनेसे जीव ज्ञान अजीव ज्ञान कहना यह स्वजाति-विजाति असद्भूत व्यवहार नय हैं।

॥ इति असद्भूत व्यवहार नय कथन समाप्त ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपचारित–असद्भूत व्यवहारः त्रेधा ॥ ८८ ॥

उपचरित असद्भूत व्यवहार नय के तीन भेद हैं ।

स्वजाति–उपचरित–असद्भूत व्यवहारो यथा पुत्र-दारादिः मम ॥ ८९ ॥

स्वजातीय पुत्र–कलत्र आदि अपनेसे भिन्न होकर भी ये मेरे है ऐसा स्वजातीय भिन्न द्रव्योंमें उपचरित उपचार संबंध स्थापित करना यह स्वजाति–उपचरित–असद्भूत व्यवहार नय है ।

विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारो यथा–वस्त्र रत्नाभरण–हेमादिः मम ॥ ९० ॥

वस्त्र–आभरण–रत्न–सुवर्ण आदि भिन्न विजातीय अचेतन पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि रुप उपचरित उपचार संबंध स्थापित करना यह विजाति–उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है ॥

स्वजाति–विजाति–उपचरित असद्भूत–व्यवहारो यथा–देश–राज्य–दुर्गादिः मम ॥ ९१ ॥

॥ इस प्रकार उपचरित असद्भूत व्यवहार के तीन भेदोंका वर्णन समाप्त ॥

देशमें रहनेवाले जीव स्वजातीय और मकान–भूमि आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजातीय ये भिन्न होकर भी उनमें ममत्व बुद्धि रुप उपचरित उपचार संबंध स्थापित करना, यह स्वजाति–विजाति–उपचरित–असद्भूत व्यवहार नय हैं।

विशेषार्थ– उपचारादपि उपचारः क्रियते यत्र सःउपचरित-असद्भूत व्यवहार, सः सत्य–असत्य–उभयार्थेन त्रेधा ।।

जो नय उपचारमें भी उपचार करता है वह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। उसके तीन भेद है। १ सत्य, २ असत्य, ३ उभय.

१) पुत्र–मित्र–कलत्र आदि जो अपने स्वजातीय लोक व्यवहारमें सत्य कहा जाता हैं उसे स्वजाति–उपचरित असद्भूत व्यवहार नय कहते है।

पुत्र मित्र कलत्रादि ममैतद् अहमेव वा।
वदन् एवं भवत्येषोऽसद्भूतो ह्युपचारवान् ।।(सं. नयचक्र)

पुत्ताइ बंधुवग्गं अहंच मम संपयाइ जंपंतो।
उक्यारा सब्भूओ सज्जाइ दव्वेसु णायव्वो ।। (प्रा. नयचक्र)

२) हेमाभारण वस्त्रादि ममेदं यो हि भाषते।
उपचाराद् असद् भूतो विद्वद्भिः परिभाषितः।

हेम आभरण रत्न आदि विजातीय अचेतन पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि का उपचार करना यह विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय हैं।

३) देशं राज्यं च दुर्गंच गृण्हातीह ममेति यः।
उभयार्थोपचारत्वात् असद्भूतोपचारतः ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसं रज्जं दुग्गं एवं जो चेव भणइ मम सव्वं ।
उहयत्थे उवयरिओ होइ असब्भूय ववहारो ॥
(नयचक्र)

देश–राज्य–दुर्ग (किला) आदि चेतन सहित अचेतन पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि का उपचार करना यह स्वजाति–विजाति उपचरित–असद्भूत व्यवहार नय हैं ।

॥ इस प्रकार नय भेदोंका वर्णन समाप्त ॥

७ गुण–व्युत्पत्ति अधिकार

सह भुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः ॥ ९२ ॥

जो द्रव्यमें सबगुणोंके साथ युगपत् सदाकाल रहते हैं उनको गुण कहते हैं । तथा जो द्रव्यमें शक्तिरुपसे सत्रुपसे सदा विद्यमान रहते है । परन्तु एक के बाद एक क्रमसे नियत क्रम बद्ध पर्याय रूपसे प्रगट होते है उन्हे पर्याय कहते हैं ।

गुण्यते पृथक् क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यैः (द्रव्यान्तरैः) ते गुणाः ॥ ९३ ॥

जो अपने विवक्षित द्रव्यको अन्य द्रव्योंसे पृथक् लक्षित करते है उन्हे गुण अथवा लक्षण कहते हैं ॥

अस्ति इति एतस्य भावः अस्तित्वं सद्रूपत्वं ॥९४॥

अस्ति इस प्रकार द्रव्यके सद्भाव रुप सत्रुप स्वभावको अस्तित्व गुण कहते है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोति इति सत् ।

जो द्रव्य अपने गुण अपनी पर्यायोमें अन्वयरूपसे रहता है, व्यापता हैं उसे सत् कहते हैं ।

सम् एकीभावेन स्वकीय गुणपर्यायान् अयते इति समयः (समयसार) जो अपनी गुणपर्यायोंके साथ एकत्व पनेसे अन्वय रुपसे सदा सर्वकाल सत्रुपसे रहता है उसको समय–पदार्थ कहते हैं ।

वस्तुनो भावः वस्तुत्वं, सामान्य–विशेषात्मकं वस्तु ॥ ९५ ॥

वस्तुका जो वस्तु स्वभाव सामान्य विशेषात्मक स्वभाव उसको वस्तुत्वगुण कहते हैं ॥

वस्तु का जो उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यात्मक अर्थ क्रियाकारित्व उसको वस्तुत्व कहते है ।

विशेषार्थ– सामान्य विशेषात्मा अर्थः । तदर्थो विषयः ।

सामान्य विशेषात्मक पदार्थ यह प्रमाणका विषय होता हैं ।

सामान्यं द्वेधा । तिर्यक्–ऊर्ध्वताभेदात् ।

सामान्यके दो भेद है । १ तिर्यक् सामान्य, २ ऊर्ध्वता सामान्य.

सदृश परिणामः तिर्यक् सामान्यं । खण्डमुण्डद्विषु गोत्ववत् ।

जैसे– खांड बैल–मुण्डबैल इत्यादिमें गोत्व सदृशधर्म पाया जाता है, वैसे अनेक द्रव्योमें तथा एक द्रव्यके अनंत गुणोमें, एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यके अनेक प्रदेशोमे जो अन्वयरुप सदृशता पाई जाती है वह तिर्यक् सामान्य है। तथा एक द्रव्यके कालभेदसे पूर्वोत्तर पर्यायोंमें जो एक अन्वयधर्म पाया जाता है यह ऊर्ध्वतासामान्य है।

विशेषाश्च। एक द्रव्यमें गुण विशेष तथा पर्यायविशेष अनेक होते है। व्यतिरेकिणः पर्यायाः। यह वह नहीं ऐसा परस्पर व्यतिरेक पर्यायोमे पाया जाता हैं। अन्वयिनो गुणाः। गुणोंमे यह वही हैं इस प्रकार एकद्रव्यका अन्यय पाया जाता है।

इस प्रकार द्रव्य सामान्य विशेषात्मक अन्वय व्यतिरेकात्मक हैं। यह वस्तुका वस्तुत्व है।

एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः पर्यायाः। आत्मनि हर्षविषादादिवत्। अर्थांतरगतः विसदृशपरिणामः व्यतिरेकः। गोमहिषादिवत्॥

द्रव्यस्य भावः द्रव्यत्वं, निजनिजप्रदेशसमूहैः अखंडवृत्या स्वभाव-विभाव पर्यायान् द्रवति द्रोष्यति, अदुद्रुवत् इति द्रव्यम्॥ ९६॥

द्रव्यका जो भाव वह द्रव्यत्व है। अपने अपने प्रदेशसमूहके साथ जो अपने अपने स्वभाव-विभाव पर्यायोप्रत अन्वय रुपसे द्रवण-गमन करता है, आगे सदा गमन करेगा, भूत कालमें गमन करते आया उसको द्रव्य कहते हैं। द्रव्यत्रिकाल अवस्थायी होते हुये भी प्रतिसमय परिणमनशील है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्द्रव्यलक्षणम्, ॥ सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोति इति सत् उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत् ॥ ९७ ॥

द्रव्यका लक्षण सत् है । अपने गुण–पर्यायोंप्रत जो व्यापता है, सदा विद्यमान रहता है वह सत् है ।

प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वं, प्रमाणेन स्व–पररूपं परिच्छेद्यं प्रमेयम् ॥ ९८ ॥

प्रमेयका भाव वह प्रमेयत्व है । प्रमाणके द्वारा स्व–पर व्यवसायरूप जो ज्ञान वह प्रमाण ज्ञान का विषय वह प्रमेयत्व गुण है ॥ यद्यपि वस्तुमें वर्तमान कालमें पर्याय रुपसे एक वर्तमान पर्यायही प्रगट दीखती है, तथापि वस्तु (भूत–वर्तमान–भविष्यत् पर्यायाणां अविभ्राड्भावसंबंधो द्रव्यं) भूत–भविष्य–वर्तमान संपूर्ण त्रिकालवर्ती पर्यायोंके अविभ्राड् अभिन्न–अखंड एक समुदाय का नाम द्रव्य है । इस वस्तु सिद्धांत के कारण वस्तुके वर्तमान पर्यायमें शेष भूत–भविष्यत् सब पर्यायें सत्रुपसे–गुणरुपसे सदा सर्व काल विद्यमान रहती हैं इसलिये केवल ज्ञानमें वस्तुके वर्तमान पर्यायके माध्यमसे वस्तुमें शक्तिरुपसे रहनेवाली तथा अपने अपनें स्वकालमें नियतक्रमबद्ध रुपसे प्रगट होनेवाली सब पर्यायें युगपत् प्रतिभासित होती हैं ।

शंका– (धवल पु. १ पृष्ठ २२)

जो जाना जाता हैं उसे प्रमेय कहते है । वस्तुमें वर्तमान पर्यायका ज्ञान होता हैं इसलिये वर्तमान पर्याय ही प्रमेय होगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूत–भविष्यत् पर्यायोंका वस्तुमें सद्भाव न होनेके कारण वे प्रमेय नहीं कहे जावेंगे ।

समाधान– यह कहना ठीक नहीं । क्योंकि वस्तुके सब त्रिकालवर्ती पर्यायसत्‌रुपसे शक्तिरुपसे गुणरुपसे सदा वस्तुमें विद्यमान रहते है । वे अपने अपनें नियत क्रमबद्ध स्वकालमें वर्तमान पर्याय रुपसे प्रगट होते हैं । इसलिये वर्तमान-भूत-भविष्य पर्याय समूहात्मक पदार्थ ही ज्ञानका प्रमेय होता है ।

अगुरुलघोः भावः अगुरुलघुत्वं । सूक्ष्माः अवाग्गोचराः प्रतिसमयं वर्तमानाः आगम–प्रामाण्यात् अभ्युपगम्याः णगुरुलघुगुणाः ॥ ९९ ॥

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञासिद्ध तु तद् ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनाः ॥

अगुरु लघुका जो भाव वह अगुरुलघुत्व है । प्रत्येक गुणमें अगुरुलघुत्व शक्तिके निमित्तसे जो सूक्ष्म अविभाग प्रतिच्छेदरुप गुणांश होते है, वे प्रतिसमय षट्स्थान पतित हानिवृद्धिरुपसे परिणमते हैं । वे इंद्रिय गोचर नहीं, वाणी गोचर नहीं है । आगमप्रामाण्यसे उनका ज्ञान होता है । आगमके सूक्ष्म विषय आज्ञा सिद्ध प्रमाण माने जाते है । क्योंकि आगमके रचयिता केवली–श्रुतकेवली वस्तुका जो वस्तुनिष्ठ यथार्थ स्वरुप हैं वही जानते हैं वही प्रतिपादन करते हैं । केवलीभगवान अन्यथावादी नहीं होते है ।

इसका वर्णन पूर्वमें सूत्र ९ तथा सूत्र १७ में किया गया हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं, (प्रदेशवतः भावः प्रदेशवत्वं) सावयवत्वंक्षेत्रत्वं । अविभागी-पुद्गल-पुरमाणुना अवष्टब्धं क्षेत्रं प्रदेशः ।। १०० ।।

प्रदेशवान्पनेका जो भाव वह प्रदेशवत्व गुण हैं । अविभागी परमाणु द्वारा व्याप्त जो आकाश का भाग उसे प्रदेश कहते हैं । उसीको क्षेत्र कहा है । द्रव्य अपने प्रदेशोंमें व्याप्त रहता है इसलिये प्रदेशवान्पना प्रदेशवत्व यह द्रव्यका सामान्य गुण है ।।

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं ।
त खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ।।

आकाशद्रव्यके जितने अंशभागमें अविभागी एक पुद्गल परमाणु व्यापता हैं उस आकाशप्रदेश भाग को प्रदेश कहते है । उस एक परमाणु व्याप्त आकाश प्रदेश भागमें सर्व परमाणुओंको भी अवगाह देनेकी शक्ति रहती है ।।

जेत्तियमेत्तं खेत्तं अणुना रुद्धं खु गयणदव्वस्स ।
तं च पयेसं भणियं जाण तुमं सव्वदरसीहिं
।। १४१ ।। प्रा. नयचक्र

आकाश द्रव्यका जो भाग एक पुद्गल परमाणु द्वारा व्याप्त है, उसे प्रदेश कहते है ऐसा सर्वदर्शी जिनभगवानने कहा हैं ।।

चेतनस्य भावः चेतनत्वं । चैतन्यं अनुभवनं

।। १०१ ।।

चेतन द्रव्यका जो भाव वह चेतनत्व गुण हैं । चैतन्य का अर्थ अनुभवन वेदन है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैतन्यं अनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च ।
क्रिया मनोवचः कायैष्वन्विता वर्तते ध्रुवं ।।

चैतन्य का नाम अनुभूति है । वह भी वेदनरुप जाननेरुप क्रियारुप ही हैं । निश्चयसे मन-वचन काय की क्रियाओंके साथ शुद्धोपयोगरूप आत्मानुभति का नाम ही चैतन्य हैं ।

ज्ञानचेतना-आत्मा – अनुभूति – आत्मोपलब्धि – आत्म-संवेदन ये सब एकार्थ वाचक है ।

अचेतनस्य भावः अचेतनत्वं अचैतन्यं अननुभवनं ॥ १०२ ॥

अचेतनका जो भाव वह अचेतनत्व सामान्य गुण है । स्वका तथा परका अनुभवन-वेदन-ज्ञान न होना यह अचेतनत्व गुण है । चेतन-जीवके व्यतिरिक्त अन्य पांच द्रव्य-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाशकाल इनको स्व का या परका कुछ भी वेदन-अनुभवन-ज्ञान होता नही इसलिये अचेतनत्व अचेतन द्रव्योंका यह सामान्य गुण हैं ।

मूर्तस्यभावः मूर्तत्वं । रुपादिमत्वं ॥ १०३ ॥

मूर्तका जो भाव वह मूर्तत्व है । रुपादिमत्त्व-स्पर्शरसगंध वर्णवान्पना हीना यह मूर्तत्व हैं ।

केवल पुद्गल द्रव्य ही मूर्त है । (स्पर्शरसगंध वर्णवन्तः पुद्गलाः)

विशेषार्थ- तथा च मूर्तिमान् आत्मा सुराभिभवदर्शनात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहि अमूर्तस्य नभसः मदिरा मदकारिणी (तत्वार्थ सार) १९ मदिराके कारण आत्मा अभिभूत–मूर्च्छित अचेतन समान दिखाई देता हैं; इसलिये संसारी आत्मा मूर्त कर्म–नोकर्म सहित होनेके कारण उपचारसे मूर्तिक कहा जाता हैं। (बंधादो मुत्ति) कर्म बद्ध संसारी आत्मा मूर्त कहा जाता हैं।

जीवाजीवं दव्वं रूवारूवित्ति होदि पत्तेयं।

संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया ॥ (गो. जीवकोड ५६३) जीवद्रव्य कथंचित् रूपी–तथा अरुपी कहा जाता हैं। संसारी जीव रूपी तथा कर्मविमुक्त सिद्ध जीव अरुपी है। उसी प्रकार अजीव द्रव्य–पुद्गल द्रव्य भी रुपी–तथा अरुपी कहा जाता है। कार्माण वर्गणारुप पुद्गल द्रव्य रुपी है, परंतु जीवसे बद्ध हुआ कर्म जीवके ज्ञानादि गुणोंका घातक होनेसे कथंचित् चेतन–अरुपी कहा जाता है कम्म संबंधवसेण पोग्गलभावमुपगयजीव दव्वाणं च पच्चक्खेण परिछित्ति कुणइ ओहिणाणं ॥ (धवल पु. १ पृ. ४३) कर्मसंबध वश पुद्गलभावको प्राप्त जीव द्रव्यके गुण-स्थानादि अचेतन भावको अवधिज्ञान प्रत्यक्षसे जानता हैं ॥

अनादिबंधन बद्धत्वतः मूर्तानां जीवावयवानां मूर्तेन शरीरेण संबंधप्रति विरोध–असिद्धेः (धवला १ पृ. २९२) अनादिबंधन-बद्ध मूर्त जीवके प्रदेशोंका मूर्त शरीरके साथ संश्लेष संबंध होनेमें कोई विरोध नहीं है ॥

अमूर्तस्य भावः अमूर्तत्वं, रुपादि रहितत्वं ॥ १०४ ॥

अमूर्त द्रव्योंका जो भाव वह अमूर्तत्व गुण है। धर्म–अधर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकाश–काल और जीव द्रव्य रुपादि गुणोंसे रहित होनेके कारण अमूर्त है ॥

विशेषार्थ– इस ग्रंथके प्रथम अधिकारमे सामान्य–विशेष गुणोंका प्ररूपण किया है। यहां इस अधिकारमें गुणोंका क्या स्वरुप हैं यह व्याकरण शास्त्रके अनुसार शब्द–व्युत्पत्तिरुपसे विवेचन किया है। जैसे सुवर्णका सुवर्णत्व;यह 'त्व' प्रत्यय भाव-वाचक अर्थमें लगाया जाता है। उसीप्रकार जीवादि द्रव्योंके अस्तित्वादि सामान्य गुण तथा चेतनत्वादि विशेष गुण इनमे 'त्व' प्रत्यय उनके भावका वाचक है। अस्तित्व यह गुण जीवादि द्रव्योंके 'अस्ति'का सत् लक्षणका भावका वाचक है। उसीप्रकार वस्तुत्व आदि धर्म वस्तुके भावके वस्तु पना के सूचक है

'त्व' यह प्रत्यय भाववाचक होनेसे उसका वस्तुसंज्ञा वाचक नामोंके साथ लगानेसे 'अस्तित्व' आदि शब्द बन जाते हैं। इस प्रकार सामान्य विशेष गुणोंका व्युत्पत्ति अर्थ कहा गया ॥

८ पर्याय–व्युत्पत्ति अधिकार

स्वभाव–विभाव रूपतया याति पर्येति परिणमति इति पर्यायः, इति पर्यायस्य व्युत्पत्तिः ॥ १०५ ॥

विशेषार्थ– वस्तूका जो विकार–विकृति–प्रतिकृति उसको पर्याय कहते है। धर्म–अधर्म–आकाश–काल द्रव्य इन चार द्रव्योंका परिणमन तो शुद्ध स्वभाव रुप ही होता हैं। जीव और पुद्गल द्रव्योंका परिणमन उनके वैभाविक शक्ति के कारण स्वभाव और विभाव रुप दोनों प्रकारका होता है। अन्य द्रव्यके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ संश्लेषरुप जो परिणमन वह विभाव परिणमन है। तथा अन्य द्रव्यके संसर्ग रहित जो स्वभाविक परिणमन होता है वह स्वभाव परिणमन है।

जो द्रव्यका तथा द्रव्यके प्रत्येक गुणका 'परि' अर्थात् समंतात् समस्तरुपसे अयनं' परिणमन होता हैं उसको पर्याय कहते हैं। पर्यायके स्वभाव–विभाव भेद हैं। तथा अर्थपर्याय और व्यंजन पर्याय रुपसे दो भेद है।

इन प्रत्येक के स्वभाव–विभाव भेदसे दो दो भेद हैं।

१ स्वभाव अर्थ पर्याय, २ विभाव अर्थ पर्याय

गुणोंके विकारको अर्थ पर्याय अथवा गुण पर्याय कहते है

१ स्वभाव व्यंजन पर्याय, २ विभव व्यंजन पर्याय.

गुणोंके समूह रुप द्रव्यके प्रदेशत्व गुणके विकारका आकारका परिणमन होता हैं वह व्यंजन पर्याय अथवा द्रव्य पर्याय है।

॥ इति पर्याय व्युत्पत्ति अधिकार ॥

९ स्वभाव व्युत्पत्ति अधिकार

स्वभावलाभात् अच्युतत्वात् अस्तिस्वभावः ॥१०६॥

जिस द्रव्यका जो अपना स्वतः सिद्ध स्वभाव प्राप्त हैं उससे कदापि च्युत न होना सदा सत् स्वरुप रहना इसीका नाम अस्तित्व स्वभाव हैं।

सब द्रव्य अपने स्वद्रव्य–स्वक्षेत्र–स्वकाल–स्वभाव चतुष्टयसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदा सर्वकाल अस्तिस्वभाव है ।। अर्थात् द्रव्य सदास्वचतुष्टयके साथ अस्तिरुप रहता हैं । (न अभावो विद्यते सताम्)

परस्वरूपेण अभावात् (अभवनात्) नास्ति स्वभावः ।। १०७ ।।

प्रत्येक द्रव्य परद्रव्य–परक्षेत्र–परकाल–परभाव रुपसे सदा सर्वकाल नास्तिस्वरुप है । अर्थात् द्रव्य परचतुष्टयरुप कदापि होता नहीं । वस्तुमें परद्रव्यादि चतुष्टयका सदा सर्वकाल अभाव है, नास्ति है ।।

विशेषार्थ– प्रत्येक वस्तुमें स्वचतुष्टयकी अस्ति तथा परचतुष्टयकी नास्ति ये दोनो धर्म अविनाभावरुपसे अविरोध रुपसे रहते । परचतुष्टयकी नास्ति विना स्वचतुष्टयकी अस्ति सिद्ध नही हो सकती ।

निज निज–नाना पर्यायेषु तदेव इदं इति द्रव्यस्य नित्य स्वभावः ।। १०८ ।।

अपनी अपनी अनन्त पर्यायोंमें सदा सर्वकाल अचलरुप रहना ध्रुव स्वभाव 'यह वही है' इस प्रकार एकत्व स्थापित करणे वाला नित्यस्वभाव है ।। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्यनित्य है ।

तस्यापि अनेक पर्याय परिणमितत्वात् अनित्य स्वभावः ।। १०९ ।।

उसी द्रव्यका अपनी अनन्त पर्यायोंमें नियतक्रमबद्धरुपसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिसमय परिणमन होनेके कारण द्रव्य अनित्य स्वभाव है। प्रमाणकी दृष्टीसे द्रव्य युगपत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होनेसे नित्यानित्यात्मक है ॥

(अनेक) स्वभावानां एकाधारत्वान् एक स्वभावः ॥ ११० ॥

द्रव्यके अनेक स्वभाव धर्मोंका आधार भूत एक द्रव्य होनेके कारण द्रव्य एक स्वभाव हैं। द्रव्यार्थिक नयसे द्रव्य एक है।

एकस्य अनेक स्वभावोपलंभात् अनेक स्वभावः ॥ १११ ॥

एकही द्रव्यका अन्वयसंबंध रखनेवाले अनेक गुण-पर्याय स्वभाव होनेके कारण द्रव्य अनेक स्वभाव हैं ॥ एकही द्रव्य अनन्त गुण और उसके अनन्त पर्याय इन सबमें एक द्रव्यरुप अन्वयसंबंध होते हुये अनेक गुण-पर्याय रूप अनेक स्वभाव है।

गुण-गुणी आदि संज्ञादिभेदात् भेदस्वभावः ॥ ११२ ॥

गुण-गुणीमें संज्ञा-लक्षण-प्रयोजन आदि भेद अपेक्षासे द्रव्य भेदस्वभाव हैं ॥ गुणोंका समुदाय गुणी एक हैं। गुण अनेक है। सद्भूत व्यवहार नय अपेक्षासे गुण-गुणीमें संज्ञा आदि भेद विवक्षासे भेद कथन किया जाता है। गुण-गुणी नाम भेद हैं। गुणी एक है गुण अनेक है संख्या भेद है। गुणका परिणमन अर्थ पर्याय हैं। इस प्रकार गुणीका परिणमन व्यंजन पर्याय है। कार्य भेद हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण–गुणी आदि अभेदस्वभावत्वात् अभेद स्वभावः ॥ ११३ ॥

गुणोंके समुदाय का नाम ही द्रव्य हैं। गुण–और गुणी इनमें यद्यपि संज्ञाभेद है तथापि वस्तुभेद नहीं है। इसलिये वस्तु अखंड एक अभेद स्वभाव है।

भाविकाले स्वस्वभाव भवनात् भव्य स्वभावः ॥ ११४ ॥

प्रत्येक द्रव्य प्रत्येक समयमें अन्य अन्य आकाररुप होता है इसलिये भाविकालमें होने योग्य होनेसे भव्य हैं।

भवितुयोग्यं भव्यत्वं, तेनविशिष्टत्वात् भव्यः।
भाविकालमें होने योग्य है। इसलिये भव्य है।

कालत्रये अपि परस्वरुपाकार अभवनात् अभव्य स्वभावः ॥ ११५ ॥

तीनों कालमें कदापि पर द्रव्यस्वरुपाकार न होनेके कारण अभव्य है। अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगास मण्णमण्णस्स :

मेलंता विय णिच्चं सगं सभावं ण मुंचंति ॥ (पंचास्तिकाय) लोकाकाशमें धर्मादिद्रव्य एकमेकमें परस्पर प्रवेशकर एक क्षेत्रावगाहरुपसे रहते हैं। परस्पर में प्रवेश कर रहते हे तथापि प्रत्येक द्रव्य अपने अपनें स्वरुपसे गुणस्वभावसे च्युत नहीं होते। प्रत्येक द्रव्य सभी अपनें अपने प्रदेशोंमें अपने अपने स्वभावमें रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारिणामिक स्वभावत्वेन परमस्वभावः ॥ ११६ ॥

प्रत्येक द्रव्य अपने अपने स्वतः सिद्ध पारिणामिक स्वभावमें रहते है इसलिये परम स्वभाव है ॥

प्रदेशादि गुणानां व्युत्पत्तिः, चेतनादि विशेष स्वभावानांच व्युत्पत्तिः निगदिता ॥ १७१ ॥

द्रव्यके प्रदेशत्वादि सामान्य गुणोंकी तथा चेतनत्वादि विशेष गुणोंकी व्युत्पत्ति कही गई है। (सूत्र ९२ से १०४ तक)

धर्मापेक्षया स्वभावा गुणाः न भवन्ति ॥ ११८ ॥

स्वभाव को धर्म भी कहते है। यहां धर्मका अर्थ स्वभाव हैं इसलिये धर्मकी अपेक्षासे स्वभाव गुणस्वरुप नहीं हैं। क्योंकि गुण ध्रुवरुप नित्य रहते है। और धर्म-स्वभावरूप परिणमन कभी स्वभाव रुप कभी परके संयोगवश विभावरुप भी परिणमते है।

स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावाः भवन्ति ॥ ११९ ॥

स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव इनकी विवक्षासे गुण परस्परमें स्वभाव भी होते है।

जैसे वस्तुमें अस्तित्व गुण अपना अस्तित्व स्वभाव सिद्ध करता हैं तथा अन्यगुणोंका भी अस्तित्व स्वभाव सिद्ध करता हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे ज्ञान दर्शन आदि जीवके गुण हैं। वे अपनी अपनी विवक्षासे स्वभाव है ज्ञानका स्वभाव पृथक् है। दर्शनका स्वभाव पृथक् है। एक क्षेत्रमे रहते हुये भी ज्ञान जीवके सब प्रदेशोमे रहता है उसी प्रकार दर्शन भी जीवके संपूर्ण प्रदेशोंमे रहता हैं। इस प्रकार कालादि अपेक्षा उन्हे गुण होकर भी स्वभाव कहा है।

द्रव्याणि अपि भवन्ति ॥ १२० ॥

प्रत्येक गुणके स्वद्रव्यादि चतुष्टय तथा द्रव्यके और अन्य-गुणोके चतुष्टय एक ही होते हैं इसलिये स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे गुण द्रव्यभी होते है ॥

स्वभावात् अन्यथा भवनं विभावः ॥ १२१ ॥

पर्यायमें स्वभाव के विरुद्ध अन्यथा रुप होना यह विभाव कहलाता हैं। पुद्गल और जीव इनमें वैभाविक शक्ति(गुण) हैं। उस वैभाविक शक्तिके कारण अन्य द्रव्यके संयोग अवस्थामें इन दो द्रव्योंका स्वभाव विरुद्ध विपरीत विभाव परिणमन होता हैं पुद्गल द्रव्य परमाणुका अन्य परमाणुओंके साथ स्कंधरुप विभाव परिणमन होता है। जीवद्रव्यका कर्मरुप पुद्गलके संयोगमें रागद्वेष मोहरुप विभाव परिणमन होता हैं। पूर्व अनादिकालीन विभाव परिणमन को स्वभावरुप मानना यह विपरीत मान्यताही विभाव परिणमन का मूल कारण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध-और अशुद्ध स्वभावकी व्युत्पत्ति

शुद्धं केवल भावं अशुद्धं तस्यापि विपरीतं ।। १२२ ।।

केवल स्वतः सिद्ध पर द्रव्यके संपर्क रहित स्वभावको शुद्ध कहते हैं। उसके विपरीत अन्य द्रव्यके संपर्कमें जो विपरीत मान्यताके कारण स्वभावसे विपरीत भाव है वह अशुद्ध भाव हैं। (उपादान सदृशं कार्यं) इस न्यायसे उपादान शुद्ध हो शुद्ध परिणति कार्य होता है। उपादान अशुद्ध हो तो अशुद्ध परिणति कार्य होता है।

स्वभावस्य अपि अन्यत्र उपचारात् उपचरित स्वभावः ।। १२३ ।।

एक द्रव्यके स्वभाव का अन्यद्रव्यमें उपचार करना यह उपचरित स्वभाव है।।

स द्वेधा, कर्मज-स्वभाविक भेदात्। यथा जीवस्य मूर्तत्वं-अचेतनत्वं यथा सिद्धात्मनां परज्ञता (सर्वज्ञता) परदर्शकत्वंच (सर्वदर्शित्वं) ।। १२४ ।।

१) उपचरित स्वभावके दो भेद है।। १ कर्मजनित २ स्वभाविक जैसे-कर्मोदय जनित कर्मबद्ध जीवको मूर्त कहना। (बंधादो मुत्ति) जातिनाम कर्मोदयसे जीवको एकेंद्रिय-द्वींद्रिय आदि कहना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्तिनामकर्मोदयसे जीवको पर्याप्त कहना। ज्ञानावरण कर्मोदयसे जीवमें जो अज्ञान भाव है अचेतन भाव है। मोहकर्मके उदयसे राग-द्वेष-मोह आदि जीवके अचेतन भाव कहते है। ये कर्मजनित औपचरिक भाव हैं।

२) कर्मके अभावमें जो जीवके स्वभाविक भाव प्रगट होते है उनको क्षायिकभाव कहना औपचारिक हैं। अथवा भगवान्के केवलज्ञानमें संपूर्ण ज्ञेय पदार्थ स्वयं प्रतिबिंबित होते है इसलिये भगवानको सर्वज्ञ-सर्वदर्शी कहना यह स्वभाविक औपचारिक भाव है।

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणयेण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥ (नियमसार)

वास्तवमें केवली भगवान आत्मज्ञ-आत्मदर्शी है। परंतु सर्व पदार्थ भगवानके ज्ञानमें स्वयं प्रतिबिंबित होते है इसलिय व्यवहार नयसे केवली भगवान सर्वज्ञ-सर्वदर्शी उपचारनयसे कहे जाते है। वास्तविक निश्चयसे वे आत्मज्ञ हैं॥

एवं इतरेषां द्रव्याणां उपचारो यथासंभवो ज्ञेयः॥ १२५॥

इस प्रकार अन्य द्रव्योमेंभी यथासंभव उपचार जानलेना॥

विशेषार्थ- तत्वार्थ सूत्रमें जो बहुप्रदेशी द्रव्योंमें प्रदेश कल्पना है वह भी उपचार है। वास्तवमें प्रत्येक द्रव्य अखंड हैं। परंतु आकाश द्रव्यके जितने भागमें एक पुद्गल परमाणु व्यापता हैं उसको प्रदेश मानकर उस प्रदेशकी मापसे सावयव बहुप्रदेशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य तथा प्रत्येक जीव द्रव्य लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी उपचारनयसे माने गये हैं। तथा आकाश द्रव्य को अनंत प्रदेशी कहा हैं। वास्तवमें आकाश द्रव्य अखंड एक द्रव्य है परंतु आकाश द्रव्यके जितनें भागमें जीवादि छहों द्रव्य रहते है उसको लोकाकाश उपचार नयसे कहा है। वास्तवमें संस्थान आकार धर्म पुद्गल द्रव्यका स्वभाव है। परंतु लोकाकाश प्रमाण एक महास्कंध जितने असंख्यात प्रदेशी हैं उसको लोकाकाश मानकर लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश प्रमाण धर्म–अधर्म प्रत्येक जीव प्रदेशोंकी अपेक्षा समान असंख्यात प्रदेश मानें हैं। वास्तवमें पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है। परन्तु दो आदि संख्यात परमाणु-ओंके स्कंधको असंख्यात प्रदेशी, असंख्यात परमाणुओंके स्कंधको असंख्यात प्रदेशी, तथा अनंत परमाणुओंके स्कंधको अनंत प्रदेशी कहा हैं। वह सब उपचारनय हैं

एयपदेसो वि अणू णाणाखंध-प्पदेसदोहोदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य कायो भणंति सव्वण्हु॥

परमाणू एकप्रदेशी होकर भी प्रत्येक परमाणुको प्रदेश उपचारसे मानकर उसको उपचारनयसे बहुप्रदेशी अस्तिकाय माना है।

उसी प्रकार वास्तवमें 'अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णकीरए गुणुप्पाओ तथापि उपचार नयसे–धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलको स्वयं अपनी क्रियावती शक्तिसे गमनशील होकर भी धर्मद्रव्यके अस्तित्वमें गमन करता है इसलिये उपचारसे धर्मद्रव्यको 'गमण सहयारी' कहा है। अधर्मद्रव्यको स्थिति सहकारी कहा है। आकाश द्रव्यको अवकाश सहकारी कहा हैं। तथा कालद्रव्यको वर्तना हेतू माना गया है। वास्तवमें कालद्रव्य अपनी वर्तना अपना परिणमन करता हैं परंतु उस कालके मानसे अन्यद्रव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने परिणमन स्वभावसे परिणमन करते हुये उनके परिणमनमें कालद्रव्य उपचार नयसे वर्तना हेतू माना गया हैं। कालाणुद्रव्यभी एक एक प्रदेशी ऐसे असंख्यात कालाणुद्रव्य है। परंतु पुद्गल परमाणु एक परमाणुसे दूसरे परमाणूको अतिक्रमण करनेको जो काल लगता है उसको उपचारसे 'समय' यह सूक्ष्म कालांश मानकर असंख्यात समयोंकी १ आवली-असंख्यात आवलीके समूहको निमेष । ८ निमिष– १ काष्ठा । १६ काष्टा– १ कला ३२ कला– १ घटिका । ६० घटका– १ दिनरात । ३० दिनरात- १ मास २ मास– १ ऋतु । ३ ऋतु १ अयन, २ अयन– १ वर्ष १२ मास– १ वर्ष, असंख्यात वर्ष– १ पल्य (व्यवहार पल्य)

असंख्यात व्यवहारपल्य– १ उद्धारपल्य

असंख्यात उद्धारपल्य– १ अद्धापल्य

असंख्यात अद्धापल्य– १ सागर

१० कोडाकोडी सागर– १ उत्सर्पिणी

१० कोडाकोडी सागर– १ अवसर्पिणी

१ उत्सर्पिणी १ अवसर्पिणी– १ कल्पकाल (२० कोडाकोडीसागर)

४ कोडाकोडी सागर– १ प्रथमकाल (अवसर्पिणी)

३ कोडाकोडी सागर– २ द्वितीय काल (अवसर्पिणी)

३ कोडाकोडी सागर– २ द्वितीय काल (अवसर्पिणी)

२ कोडाकोडी सागर– ३ तृतीय काल (अवसर्पिणी)

१ कोडाकोडी सागर को ४२००० वर्ष कम– ४ चतुर्थकाल (अवसर्पिणी)

२१००० वर्ष– ५ पंचमकाल (अवसर्पिणी)

२१००० वर्ष– ६ षष्ठकाल (अवसर्पिणी)

२१००० वर्ष– ६ षष्ठ काल (उत्सर्पिणी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१००० वर्ष- ५ पंचमकाल (उत्सर्पिणी)
१ कोडाकोडी सागर(४२००० वर्ष कम)- ४ चतुर्थकाल (उत्सर्पिणी)
२ कोडाकोडी सागर- ३ तृतीय काल (उत्सर्पिणी)
३ कोडाकोडी सागर- २ द्वितीयकाल (उत्सर्पिणी)
४ कोडाकोडी सागर- १ प्रथम काल (उत्सर्पिणी)
सूर्यके उदय कालसे अस्तकाल- १ दिन
चंद्रके उदयसे अस्तकाल तक- रात्र

इस प्रकार ज्योतिष-विमानचक्रके कालसे दिनरातका व्यवहार कालप्रमाण ज्ञात होता है।

यह सब उपचार काल व्यवहार काल उपचार नय है।

इसी प्रकार क्षेत्र का प्रमाण भी उपचार नय हैं।

असख्यात- प्रदेश- १ यव	२००० कोश- योजन
८ यव- १ अगुल	५२६$\frac{६}{१९}$ - भरतक्षेत्रव्यास
८ अंगुल- १ वीत	१ लाख योजन-जंबूद्वीपव्यास
२ वीत- १ हाथ	४५ लाख योजन- अडीच द्वीपव्यास
४ हाथ- १ धनुष	४५ लाख योजन- सिद्धशिला
२००० धनुष- १ कोश	३४३लाख योजन-धनलोन प्रमाणक्षेत्र

समानशील हुये विना और पुद्गल का सख्य संश्लेम संबंध होता नही इसलिये जिस प्रकार उपचार नयसे कर्मके संयोगमें जीवका राग द्वेष मोह भावरूप परिणमन, जीवकी १४ गुणस्थान १४ मार्गणा १४ जीवसमास अवस्थाएं सब अचेतन भाव कहे जाते हैं, उसी प्रकार कार्माणवर्गणा रुप पुद्गल द्रव्यभी जीवके परिणामका निमित्त लेकर जब कर्मरुप परिणमन करता है तब जीवके ज्ञानादि गुणोंका घात करता हैं इसलिये उसको उपचारसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेतन माना हैं। (सभानशील व्यसनेषु सख्यं) व्यवहार शब्दका प्रयोग जब उपचार अर्थमें किया जाता है तब सब व्यवहार कथन हैं। बद्ध जीवको मूर्त–अचेतन कहना जीवसे बद्ध कर्म को सचेतन-अमूर्त-सूक्ष्म कहना यह सब उपचार कथन है। भूतनैगमनयसे सिद्धोंमे तीर्थ–लिंग–लेश्या–उपपाद ख्याति आदि विकल्पकी अपेक्षासे भेद मानना उपचार कथन हैं।

भाविनैगमनयसे श्रेणिक आदि जीवोंको भावी तीर्थंकर मानकर उनकी वंदना करना यह सब उपचार नय कथन है।

१० एकांत पक्ष दोष (नयाभास) अधिकार

दुर्नयैकान्तमारूढा भावानां स्वार्थिका हिते।
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ता सकलंका नया यतः॥

जो नये सत्-असत्–नित्य–अनित्य आदि अनेकान्तात्मक धर्मोंमन्मेसे किसी एक धर्मकोही सत्‌रुप परमार्थ मानते है दूसरे धर्मोका अभाव मानते हैं, सर्वथा निषेध करते है वे स्वार्थिक–अपनी स्वेच्छानुसार विपरीत वस्तु स्वरुप मानते हैं, उनको मिथ्या–विपरीत नय कहते है। वे कलंक–दोष युक्त होनेसे उनको नया भास कहा हैं।

संस्कृत नयचक्रमें पाठ भेद है

दुर्णयैकांत मारूढा भावा न स्वार्थिकाहिताः।
स्वार्थिकास्तद् विपर्यस्ता निष्कलंका नयायतः॥

जो दुर्नय एकांत पक्षारुढ हैं वे अपने स्वार्थ–स्वप्रयोजनकी भी सिद्धि नही कर सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुको सर्वथा सत् माननेवाले पर चतुष्टयसे असत् का निषेध करनेके धारण अपने सत्पक्षकी भी सिद्धि नहीं कर सकते इसलिये एकांत नयको स्ववैरी कहा है। (सर्वे एकांतवादाः स्ववैरिणः परवैरित्वात्) इसके विपरीत जो अनेकांतवादी अन्य धर्मोको गुणरुपसे स्वीकार करते हैं वे स्वार्थ सिद्धि करते है इसलिये स्वार्थिक सम्यक् नय कहलाते है।

तत् कथं ॥ २६ ॥ वह कैसे ?

तथाहि–सर्वथैकांतेन सद्रुपस्य न नियतार्थ व्यवस्था, संकरादिदोषत्वात् ॥ १२७ ॥

वह इसप्रकार– वस्तु स्वरुपसे सत् पररूपसे असत् इस प्रकार अनेकान्तात्मक होकर भी उसे सर्वथा एकांतसे सत् रुपही मानाजावे पररुपसे असत् नही मानाजावे तो पररुपसे भी सत् माननेके कारण वस्तुकी स्वचतुष्टयसे सतरुप नियत अर्थ व्यवस्था नही घटित होगी। स्वरुपसे सत् और पररुपसे भी सत् माननेके कारण संकर आदि दोष आते है। १ संकर २ व्यतिकर ३ विरोध ४ वैयधिकरण्य ५ अनवस्था ६ संशय ७ अप्रतिपती ८ अभाव ये एकांत मतोमें दोष आते है।

१) संकर– स्व–परका एकत्र सद्भाव माननेसे स्व–परमें भेद न रहनेसे संकर दोष आता है। (सर्वेषांयुगपत् प्राप्तिः संकरः)

२) व्यतिकर– वस्तुका नियत स्वरुप न रहनेसे स्वमें पर, और परमे स्वका प्रवेश मानना व्यतिकर दोष है। (परस्पर अनुप्रवेशः व्यतिकरः)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३) विरोध– सत् को असत् मानना, असत् को सत् मानना, इस प्रकार परस्पर विरोधी धर्मोंका युगपत् सद्भाव मानना विरोध हैं। सत्–असत् दोनोंका युगपत् सद्भाव मानना।

४) वैयधिकरण्य– सत् और असत् का एक अभिन्न अधिकरण मानना, भिन्न भिन्न अधिकरण न मानना यह वैयधिकरण्य दोष है।

५) अनवस्था– एक दूसरेका कारण, दूसरा तीसरेका कारण इस प्रकार अमर्याद अन्य अन्य कारण कल्पना करना यह अनवस्था दोष है। जैसे जगत् सृष्टिका कर्ता ईश्वर, ईश्वर का कर्ता अन्य ईश्वर–इस प्रकार अमर्याद अन्य अन्यकल्पना करना, कहींपर उसका अंत न होना इसको अनवस्था दोष कहते है।

६) संशय– उभय कोटिको स्पर्श करनेवाला दोलायमान-ज्ञान संशय हैं। जैसे यह सफेदवर्णवाली वस्तु सीप हैं या चांदी है। इसप्रकार दोलायमान ज्ञान संशय हैं।

७) अप्रतिपत्ति– (अनध्यवसाय) वस्तुस्वरुपका निश्चित निर्णय न होना अप्रतिपत्ति दोष कहलाता हैं।

८) अभाव– वस्तुका सर्वथा अभाव मानना। जैसे गधेका सिंग, आकाश पुष्प इस प्रकार सर्वथा एकांत पक्षमें अनेक दोष संभव होते है। एकांत पक्षवादी अन्य अविनाभावी धर्मके विना अपने पक्षकी भी सिद्धि नही कर सकता। इसलिये उसको स्ववैरी कहा हैं।

तथा असद् रुपस्य सकलशून्यता प्रसंगात्॥ १२८॥

इस प्रकार सर्वथा एकांत पक्षमें उक्त संकर आदि दोष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न होनेसे अपने पक्षकी भी सिद्धि न कर सकनेके कारण सकल शून्य दोष का प्रसंग आता है।

नित्यस्य एकरुपत्वात्, एकरुपस्य अर्थ क्रियाकारित्वाभाव अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्य अपि अभावः ॥ १२९ ॥

वस्तुको सर्वथा नित्य एकांत माननेपर वह सदा एकरुप रहेगो। सदा एकरुप रहनेसे वस्तुमें उत्पाद-व्ययरूप परिणमनरुप अर्थ क्रिया नहीं होगी। अर्थक्रियाके अभावमें वस्तुका भी अभाव होगा ॥

अनित्य पक्षेऽपि निरन्वयत्वात् अर्थक्रिया कारित्वाभावः। अर्थक्रियाकारित्व अभावे द्रव्यस्य अपि अभावः ॥ १३० ॥

वस्तुको सर्वथा क्षणिक-विनाशनीय अनित्य एकांतपक्ष माननेसे वस्तुका उत्तरसमयमें सर्वथा निरन्वय नाश होनेसे वस्तुमें जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवरुप परिणमनरुप अर्थक्रिया होती रहती है वह अर्थक्रियाकरित्व सिद्ध न होनेसे द्रव्यके अभाव का प्रसंग आता है। द्रव्यका सर्वथा अभाव माननेपर सकल शून्यताका प्रसंग आता है।

एकस्वरुपस्य एकान्तेन विशेषाभावः, सर्वथा एकरुपत्वात्। विशेषाभावे सामान्यस्य अपि अभावः ॥ १३१ ॥

वस्तुमें उत्पाद-व्ययरूप परिणमनरुप अर्थक्रिया न माननेके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण वस्तुको सर्वथा एक स्वरुप मानना पडेगा। सर्वथा एकरुप माननेसे वस्तुमें पर्याय विशेषोंका भी अभाव मानना पडेगा। विशेषोंके अभावमे सामान्य का भी अभाव माननेका प्रसंग आवेगा

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता हि पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ॥ (पंचास्तिकाय)

पर्याय विशेष रहित द्रव्य सामान्य कदापि संभव नही हैं। तथा द्रव्य सामान्य रहित पर्याय विशेष विना आधार रह नही सकते। द्रव्य और पर्याय, सामान्य और विशेष इनसे अनन्यभूत पदार्थ है ऐसा आचार्य कहते है ॥

निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत् खरविषाणवत्।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वय् एव हि ॥

विशेष रहित सामान्य गधेके सिंग समान अथवा आकाश पुष्प के समान् असत् है। उसीप्रकार सामान्य रहित विशेष भी सर्वथा असत् है ॥

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावः, निराधारत्वात्। आधर-आधेय-अभावात् च ॥ १३२ ॥

सर्वथा अनेक एकांत पक्षमें भी उक्त प्रकारसे द्रव्यक्त अभाव दोष आता हैं। अनेक गुण और पर्याय द्रव्यके अभावमें निराधार ठहर नही सकते। आधार-आधेय भाव का अभाव होनेसे सर्व पदार्थोका अभाव माननेका प्रसंग आता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेदपक्षेऽपि विशेष स्वभावानां निराधारत्वात् अर्थ-क्रियाकारित्वाभावः । अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्यापि अभावः ॥ १३३ ॥

सर्वथा एकांत भेद पक्ष माननें पर भी भेद विशेष विना द्रव्य–आधारके उनमें परिणमनरुप अर्थक्रिया न होनेके कारण अर्थक्रियाकारित्व का अभाव होगा । अर्थक्रियाकारित्वके अभावमें द्रव्यका भी अभाव माननेका प्रसंग होगा ॥ (न खलु द्रव्यात् पृथग्भूतो गुणो वा पर्यायः)

अभेदपक्षेऽपि (सर्वथा) सर्वेषां एकत्वं । सर्वेषां एकत्वे अर्थक्रिया कारित्वाभावः । अर्थक्रिया कारित्वाभावे द्रव्यस्य अपि अभावः ॥ १३४ ॥

सर्वथा अभेद पक्षमें सब द्रव्य एकत्व स्वभाव होंगे । सब द्रव्य सर्वथा एकत्व स्वभाव होनेसे विविध परिणमन रुप अर्थक्रिया कारित्वका अभाव होगा । अर्थक्रिया कारित्वके अभावमें तदाधार भूत द्रव्यके अभाव का प्रसंग आवेगा ।

टोप– यदि पुनः एकांतेन ज्ञानं आत्मा इति भव्यते तदा ज्ञान गुणमात्रः एव आत्मा प्राप्तः । सुखादि धर्माणां अवकाशो नास्ति । तथा सुखादि धर्म समूहा भावात् आत्माभावः । आत्मनः आधार भूतस्य अभावात् आधेयभूतस्य ज्ञानस्य अपि अभावः । इति एकान्ते सति द्वयोरपि अभावः ॥ (प्रवचनसार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भव्यस्यैकान्तेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यान्तरत्व प्रसंगात् । संकरादि दोष प्रसंगात् ॥ १३५ ॥

एकांतसे सर्वथा भव्य (भवितुंयोग्यः) परचतुष्टयरुपसे भी होने योग्य माना जावे तो कोई नियामक व्यवस्था न होनेके कारण एक द्रव्य अन्यरूप होनेका प्रसंग आवेगा । जीव अजीव रुप अजीव जीवरुप होवेगा जिस कारण सर्व-संकर आदि दोषोंका प्रसंग आवेगा ॥

विशेषार्थ– यदि वस्तुको सर्वथा एकांतसे भव्य अर्थात् किसीभी रुप होने योग्य माना जावे तो कोई नियामक न होनेसे एक वस्तु अन्य वस्तु रुप हो जानेसे सर्व संकर दोष आवेंगे । वस्तु परचतुष्टयसेभी होने योग्य माना जावे तो स्व और पर दोनों एकरुप होनेसे जीव अजीवरुप, तथा अजीव जीवरुप होने का प्रसंग आवेगा । (सर्वेषां युगपत् प्राप्तिः संकरः) सब एक रुप हो जावेंगे इस प्रकार सर्व संकर दोष आवेगा । (परस्पर विषययनं व्यतिकरः) एक दूसरेका विषय बनेगा । चक्षुसे सुनना, कानसे देखना इस प्रकार व्यतिकर दोष का प्रसंग आयेगा । दो विरुद्ध धर्म एक साथ रहनेसे विरोध दोष आवेगा । इत्यादि अनेक दोषके प्रसंग आते हैं ।

सर्वथा अभव्यस्य एकान्तेऽपि तथा शून्यता प्रसंगात्, स्वरुपेण अपि अभवनात् ॥ १३६ ॥

यदि वस्तूको सर्वथा अभव्य–किसी भी रुपसे न होने योग्य माना जाय तो वस्तु स्वचतुष्टयसेभी न होने योग्य माननेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुका स्वचतुष्टय रुपसे भी परिणमन न माननेपर वस्तुका सर्वथा शून्यता का प्रसंग आवेगा। क्योंकि जो वस्तु अपने स्वचतुष्टयसे भी आदि अभव्य न होने योग्य हैं। और परचतुष्टय रुपसे भी न होने योग्य है इस प्रकार सर्वथा न होने योग्य वस्तु सर्व शून्य दोष युक्त होवेगी।

स्वभाव स्वरुपस्य एकान्तेन संसारा भावः ॥१३७॥

वस्तु यदि सर्वथा एकांतसे सदासर्वदा स्वभाव रुपही रहती है ऐसा माना जावे तो संसार अवस्थामें जो कर्म–नोकर्मके संयोगवश रागादिरुप विभाव परिणमन होता है उसका अभाव होनेसे संसारका अभाव माननेका प्रसंग आवेगा। इसलिये संसार निरपेक्ष सर्वथा स्वभाव–एकांत पक्ष भी नया भास हैं। क्योंकि मोक्ष यह अवस्था संसारपूर्वक होती है। यदि संसार का अभाव है तो मोक्षका भी अभाव माननेका प्रसंग आवेगा।

विभाव पक्षेऽपि मोक्षस्य अपि अभावः ॥ १३८ ॥

सर्वथा विभाव एकांत पक्ष मानने पर भी सदा संसार रहनेपर कदापि मोक्ष न होनेसे स्वभाव अवस्था स्वरुप मोक्षके अभावका प्रसंग आवेगा।

सर्वथा चैतन्यमेव इत्युक्तेऽपि सर्वेषां शुद्ध ज्ञान-चैतन्यावाप्तिःस्यात् तथासति ध्यानं ध्येयं, गुरु–शिष्यादि-अभावः ॥ १३९ ॥

लोकमें सर्वथा चेतन द्रव्य ही हैं, कोई अचेतन नहीं हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार ज्ञाना द्वैत अथवा ब्रम्हा द्वैत की तरह चैतन्य एकांत पक्ष माननेपर लोकमें जो अन्य अचेतन द्रव्य है उनका अभाव माननेका प्रसंग आवेगा। तथा सर्वत्र शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरुप चैतन्य ही माना जावे तो जो लोकमें ध्यान-ध्येय-ज्ञान-ज्ञेय-गुरु-शिष्य आदि अनेक प्रकार विविधता प्रतीत होती है उसका अभाव माननेका प्रसंग आवेगा। लोक परमात्माका ध्यान करते है। यदि सब लोक शुद्ध चैतन्य परमात्म स्वरुप हैं तो ध्यान-ध्याता-ध्येय भेद का अभाव होगा। यदि सर्वत्र शुद्ध ज्ञानका ही सद्भाव होगा, तो ज्ञेयके अभावमें ज्ञान किसको जानेगा। सर्वत्र शुद्ध पूर्ण ज्ञानवाले गुरुही होंगे तो शिष्यके अभावमें उनके गुरुपना काभी अभाव माननेका प्रसंग आवेगा।

सर्वथा-शद्वः सर्व प्रकारवाची, अथवा सर्व काल-वाची, अथवा सर्व नियमवाची वा, अनेकान्त सापेक्षी वा? यदि सर्व प्रकारवाची, सर्वकालवाची अनेकाना वाची वा, सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्दः एवंविधः, चेत्, नहि सिद्धं नः समीहितं। अथवा नियमवाची चेत्, तर्हि सकालार्यानां तव प्रतीतिः कथं स्यात्? नित्यः अनित्यः, एकः, अनेकः, भेदः अभेदः, कथं प्रतीतिः स्यात् नियमित पक्षत्वात् ॥ १४० ॥

सर्वथा यह शद्व क्या सर्व प्रकारवाची है? या सर्व कालवाची है? या अनेकान्तवाची है? यदि सर्व प्रकारवाची, यदि वा सर्व कालवाची, यदि वा अनेकान्तवाची हो तो हमारा (अनेकान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन शासनका इष्ट सिद्धान्त सिद्ध हो गया। यदि सर्वथा शब्द नियमवाची (एकांतपक्षवाची) है, तो फिर वह नियमित (एकांत) पक्षवाची होनेके कारण, संपूर्ण अर्थोंकी अर्थात् नित्य–अनित्य, एक-अनेक, भेद–अभेद, चेतन–अचेतन आदि सब पदार्थोंकी प्रतीति कैसे होगी? अर्थात् कदापि नहीं होगी।

अन्य एकांत पक्षवाले 'सर्वथा' इस शब्दका अर्थ नियमवाची करते है। अर्थात् नियमसे वस्तुको अन्य धर्म निरपेक्ष एक विवाक्षित धर्मात्मक ही मानते है। इसलिये वे अन्यधर्मके विना अपने विवक्षित धर्मको भी सिद्धि नहीं कर सकनेके कारण उनको स्ववैरी–मिथ्यादृष्टि कहा हैं। "निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्॥" अन्यधर्म निरपेक्ष नय स्ववैरी होनेके कारण मिथ्या हैं। और वेही जब अन्यसापेक्ष होते है तब वे सब अर्थक्रिया कारी वस्तुके वाचक होनेसे सम्यक् कहलाते है।

परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा।
जइणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचि वायणा दो॥
(गो. जीव ८९५)

अन्य एकांत वादीयोंका वचन सर्वथा–परनिरपेक्ष एकही नियमित वस्तु धर्मकी मान्यता होनेके कारण मिथ्या है। परंतु अनेकांत जैन शासन स्याद्वाद सापेक्ष होनेके कारण वस्तुनिष्ठ सत्–असत्, नित्य–अनित्य, एक–अनेक, भेद–अभेद उभय धर्म सापेक्ष होनेके कारण यथार्थ सम्यक् है।

सर्वथा यह शब्द सर्व प्रकार वाचक, सर्व काल वाचक, परस्पर विरोधी उभय धर्मात्मक वस्तुनिष्ठ होनेके कारण समीचीन सम्यक्, प्रत्यक्ष प्रमाण प्रतीति सिद्ध हैं। परंतु सर्वथा शब्दका अर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वसापेक्ष न करते हुये नियमित मर्यादित एक धर्म वाचक करनेके कारण सर्वथा–नियमित एकांत पक्षवादी वस्तुको अन्यधर्म निरपेक्ष एक–धर्म युक्त ही मानते है इसलिये वह एकांत पक्षवादी का वचन वस्तुविपरीत–मिथ्या एकांत कहा जाता हैं ।

तथा अचैतन्य पक्षेऽपि सकल चैतन्योच्छेदः स्यात् ॥ १४१ ॥

उसी प्रकार चैतन्य निरपेक्ष सर्वथा अचैतन्य पक्षको जो एकांत पक्षवादी स्वीकार करते है, मानते है उनके मतसे संपूर्ण चैतन्य तत्त्वका उच्छेद–नाश–अभाव माननेका प्रसंग आता है ।

मूर्तस्य एकान्तेन आत्मनः मोक्षस्य न अवाप्तिः स्यात् ॥ १४२ ॥

यदि आत्माको सर्वथा एकांतसे कर्मबद्ध होनेके कारण मूर्तही माना जावे तो कदापि मोक्षकी प्राप्ति न होनेका प्रसंग आवेगा ॥

सर्वथा अमूर्तस्य अपि तथा आत्मनः संसार विलोपः स्यात् ॥ १४३ ॥

उसी प्रकार यदि सर्वथा एकांतसे आत्माको अमूर्त माना जावे तो जीवके साथ अनादि कालसे प्रवृत्त जो संसार प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहा हैं उसका लोप होगा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक प्रदेशसा एकान्तेन अखंड परिपूर्णस्य आत्मनः अनेक कार्यकारित्वे–एव हानिः स्यात् ।। १४४ ।।

यदि एकांतसे आत्मद्रव्यको एक प्रदेशी माना जावे तो अखंड बहु प्रदेशी परिपूर्ण यह आत्मा अनादि कालसे नाना योनियोंमें जो अनेक नानाविध आकार धारण करता हैं, बहुप्रदेशी सावयव होनेसे जो अनेक कार्य करता हैं उसके अभावका प्रसंग आवेगा ।

सर्वथा अनेक प्रदेशत्वे अपि तथातस्य अनर्थकार्य कारित्वं स्वस्वभावशून्यता प्रसंगात् ।। १४५ ।।

उसी प्रकार यदि आत्माको सर्वथा एकांतसे अनेक प्रदेशी बहुप्रदेशी माना जावे तो आत्माके संपूर्ण भागमें अखंड प्रदेशोंमें जो एक अर्थक्रियारुप परिणमन होता है उसके अभाव का प्रसंग आवेगा ।

विशेषार्थ– आत्माको सर्वथा अनेक–भिन्न भिन्न पृथक् पृथक् प्रदेश माने जावे तो आत्माके अखंड परिपूर्ण असंख्यात प्रदेशोंमें जो एकरुप अर्थक्रिया परिणमन होता हैं उसके अभाव का प्रसंग आवेगा । क्योंकि बहुप्रदेशी आत्माके अखंड पिंडरुप एक द्रव्य स्वभावमें एकरुप अर्थक्रिया होती है । सर्वथा भिन्नभिन्न अनेक प्रदेशोंमें एकरुप अर्थक्रिया का अभाव होगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धस्य एकान्तेन न कर्ममलकलंकावलेपः, सर्वथा निरंजनत्वात् ॥ १४६ ॥

यदि आत्माको एकान्तसे सर्वथा निरंजन शुद्ध स्वभाव माना जावे तो संसार अवस्थामें भी कर्ममल का अवलेप (बंधन) जो प्रत्यक्ष प्रतीत होता हैं उसको न माननेका प्रसंग आवेगा ।

सर्वथा अशुद्धैकान्तेऽपि तथा आत्मनो न कदापि शुद्ध-स्वभाव प्रसंगः स्यात्, तन्मयत्वात् ॥ १४७ ॥

यदि आत्माको सर्वथा अशुद्ध माननेपर भी वह आगे कदापि शुद्ध स्वभाव वाला नहीं हो सकेगा । अर्थात् संसारी आत्मा सर्वदा संसारी अशुद्धही रहेगा । उसको कदापि मोक्षकी प्राप्ति नहीं होगी । परंतु नित्यविद्यमान शुद्धस्वभाव के आश्रयसे अशुद्ध-संसारी आत्मा सिद्ध अवस्था धारण कर शुद्ध होता है ।

उपचरितैकान्तपक्षे अपि न आत्मज्ञता संभवति, नियमित पक्षत्वात् ॥ १४८ ॥

यदि आत्माको सर्वथा उपचरित एकांत स्वरुप माना जावे तो वह कदापि स्वयं आत्मज्ञ संभव नहीं होगा । संसार अवस्थामें जैसा इंद्रियोंके माध्यमसे उपचारसे ज्ञाता बनता हैं जैसा सर्वथा उपचरित एकांत माना जावे तो सिद्ध अवस्थामें तथा आत्मज्ञ ज्ञानी अवस्थामें जो आत्मा स्वयं स्वसंवेदन द्वारा आत्मज्ञ बनता हैं वह आत्मज्ञता कदापि संभव नही होगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा आत्मनः अनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात् ॥ १४९ ॥

तथा यदि आत्माको सर्वथा एकांतसे अनुपचरित–मुख्यरुपसे केवल आत्मज्ञ ही माना जावे तो वह संसार अवस्थामें जो इंद्रियोंके माध्यमसे उपचारसे ज्ञेयपदार्थोको जानता है, ऐसा जो प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहा है उसमे विरोध आवेगा। अर्थात् आत्मा केवल अनुपचरित मुख्यरुपसे आत्मज्ञही माननेका प्रसंग आवेगा। इस प्रकार सर्वथा अनुपचरितपक्ष माननेपर आत्मा जो उपचारसे इंद्रियोंको माध्यमसे ज्ञेय परपदार्थोको जानता हैं, उसमें परज्ञता प्रत्यक्ष प्रतीत होती हैं उसमें विरोधका प्रसंग आयेगा।

निश्चयसे अनुपचरित नयसे आत्मा आत्मज्ञ है, व्यवहार नयसे उपचार नयसे परपदार्थोको इंद्रियोंके माध्यमसे जानता है ऐसा कहा जाता हैं। इसलिये पराधीन संसार अवस्थामें वह व्यवहार नयसे परको जाननेवाला उपचारसे कहा जाता है वास्तवमें अनुपचरित निश्चय नयसे वह स्वयं आत्मज्ञ ही है।

निश्चयसे आत्मज्ञ हुये विना व्यवहारसे परको जाननेकी क्रिया नहीं कर सकता। व्यवहारसे उपचारनयसे परको जानते समय भी प्रथम ज्ञान अपने स्वतःसिद्ध स्वभावसे अनुपचरित निश्चयनसे आत्मज्ञरुप स्वव्यवसाय करता हैं। स्वव्यवसाय रुप दर्शन हुये विना अर्थव्यवसाय रुप ज्ञेय पदार्थका ज्ञान होता नही। इसलिये आत्मा स्व-परज्ञ कहलाता हैं। इसलिये अध्यात्म नयसे आत्मा अनुपचारनयसे निश्चय नयसे आत्मज्ञ तथा उपचार नयसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार नयसे इंद्रियोंके माध्यमसे परको जाननेकी क्रिया करता हैं इसलिये परज्ञ है।

११ नय योजना अधिकार

इस अधिकारमें नयकी योजना–प्रयोग किस विवक्षासे किया जाता है इसका ज्ञान कराना इस अधिकार का प्रयोजन है।

नाना स्वभाव संयुक्त द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।
तच्च स्वापेक्षसिद्धार्थं स्यात् नयैर्निश्चितं कुरु॥
(नयचक्र ६४)

प्रमाणके द्वारा अनेकान्तात्मक वस्तुतत्त्वका ज्ञान करनेपर एकही द्रव्यमें परस्पर विरोधी अनेक धर्मोंकी परस्पर सापेक्षता अविरोध सिद्ध करनेके लिये नयोंद्वारा उन परस्पर सापेक्ष अविनाभावी धर्मोंका यथायोग्य सुनिश्चित निर्णय करना चाहिये द्रव्यके संपूर्ण अशधर्मोंका अविरोध निर्णय वस्तुके एक एक अंशधर्मका विवक्षित नय निक्षेप द्वारा ज्ञान करके किया जा सकता हैं। संपूर्ण अंशोंका ग्रहण करना प्रमाण ज्ञान हैं। उसके एक एक अंशका ज्ञान करना यह नय ज्ञान हैं।

जो नय वस्तुके परस्पर विरोधी धर्मोंको सापेक्ष नय दृष्टि द्वारा स्यात् शब्द प्रयोग पूर्वक सिद्ध करते है वे सुनय कहलाते हैं। जो नय अन्य धर्म निरपेक्ष अपनें विवक्षित एकही धर्मके अस्तित्व की मान्यता स्वीकार करना चाहते हैं वे दुर्नय कहलाते हैं। क्योंकि वे अपने एकांत नय पक्षको भी आप प्रतिपक्ष धर्मके विना सिद्धि नहीं कर सकते। इसलिये वे दुर्नय नया भास है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वद्रव्यादि ग्राहकेण अस्ति स्वभावः ॥ १५० ॥

स्वद्रव्य–स्वक्षेत्र-स्वकाल–स्वभाव रुप स्वचतुष्टय की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य सदासर्वकाल अस्तिस्वभाव है। नाऽसतो विद्यते भावः, नाभावो विद्यते सताम्। असत् का कदापि उत्पाद-संभव नहीं, तथा सत्का कदापि नाश संभव नहीं। वस्तु सदा स्वचतुष्टयसे सत्रुप रहती हैं। (सूत्र ५४ तथा १८८ में इसका विवरण आया है)

परद्रव्यादि ग्राहकेण नास्तिस्वभावः ॥ १५१ ॥

परद्रव्य-परक्षेत्र–परकाल–परभाव की अपेक्षा वस्तु सदा सर्वदा नास्ति स्वभाव हैं। अर्थात् वस्तुमें परद्रव्यादि पर चतुष्टय की सर्वदा नास्ति हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका जो उपकार अपकार सहकार माना जाता है वह सब असद्भूत व्यवहार नयका उपचार किया जाता है। (आलाप पद्धति सूत्र पप तथा १८९ देखो)

उत्पाद-व्यय गौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः ॥१५२॥

वस्तूके उत्पाद–व्यय धर्मोको गौणकर ध्रुवसत् की प्रधानताकी विवक्षासे वस्तु सदा ध्रुव–नित्य है। द्रव्यरुपसे अपरिणमनशील है, द्रव्य का द्रव्यांतर परिणमन कदापि होता नही।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केनचित् पर्यायार्थिकनयेन अनित्य स्वभावः ॥ १५३ ॥

किसीभी पर्यायार्थिक नयकी विवक्षासे द्रव्य प्रतिसमय पूर्वोत्तर पर्यायरूपसे उत्पाद-व्ययरूपसे परिणमन स्वभाव है।

भेदकल्पना निरपेक्षेण एकस्वभावः ॥ १५४ ॥ (देखो सूत्र ५३।१८७)

वस्तुके गुणभेद-पर्याय भेद की विवक्षा गौण अविवक्षित कर अभेद विवक्षा की प्रधानतासे द्रव्य सदा एक स्वभाव है।

अभेदनय विवक्षासे णविणाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो आत्मामे न केवल ज्ञान हैं, न केवल दर्शन हैं, (समयसार ७) न केवल चारित्र है किंतु ज्ञान-दर्शन-चारित्र भेद जिसमें अतर्भूत है-गौण अविवक्षित है ऐसी अभेद विवक्षासे आत्मा एक शुद्ध ज्ञायक स्वभाव हैं।

अन्वय द्रव्यार्थिकेन एकस्य अपि अनेक द्रव्य स्वभावत्वं ॥ १५५ ॥

अन्वय द्रव्यार्थिक नयसे, अन्वयरुप एक द्रव्यमें भी एक द्रव्यान्वय रखनेवाले अनेक स्वभाव पाये जाते हैं॥

विशेषार्थ- जिसके होनेपर जो होता है वह अन्वय है। जैसे एक द्रव्यके अनेक गुण तथा उसके अनेक पर्यायोंमें, 'यह वही है, यह वही है ऐसा एक द्रव्यका अन्वय संपूर्ण पर्यायोंमें पाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। इसलिये अन्वय द्रव्यार्थिक नय दृष्टिसे अन्वयरुप एक द्रव्य अनेक स्वभावरुप प्रतीत होता है।

सद्भूत व्यवहारेण गुण–गुण्यादिभिः भेदस्वभावः ॥ १५६ ॥

सद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षासे गुण–गुणी, पर्याय–पर्यायवान् आदि अभेदवस्तुमें संज्ञा–लक्षण–प्रयोजन आदि अपेक्षासे भेदग्रहण करना यह सद्भूत व्यवहार नय है।

भेदकल्पना निरपेक्षेण गुण–गुण्यादिभिः अभेद–स्वभावः ॥ १५७ ॥

भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे गुण–गुणी आदिमें वस्तुभेद न होनेके कारण अभेद स्वभाव हैं।

गुण–गुणी आदि कल्पना अभेद द्रव्यमें भेद विवक्षा लेकर ही की जाती हैं। यदि भेद कल्पना गौण अविवक्षित कर जाती हैं तो द्रव्य अभेद स्वभाव प्रतीत होता है।

परमभाव ग्राहकेण भव्य–अभव्य–पारिणामिक स्वभावः ॥ १५८ ॥

परम पारिणामिक भाव ग्राहक शुद्ध नयसे प्रत्येक वस्तु–भव्य–अभव्य–पारिणामिकस्वभाव सदा प्रतीत होती हैं। जो नय वस्तुके शुद्ध–अशुद्ध उपचार रहित स्वतःसिद्ध द्रव्यके स्वभाव को ग्रहण करता हैं वह पारिणामिक ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तु का पारिणामिक भाव सदा अपने स्वचतुष्टयरुपसे भव्य (भवितुंयोग्यः) सदा होने योग्य परिणमने योग्य तथा परचतुष्टय-रुपसे अभव्य–न होने योग्य–न परिणमने योग्य प्रकार ये भव्य–अभव्य निसर्गसिद्ध परिणामिक भाव सब द्रव्योंमें पाया जाता है।

शुद्ध–अशुद्ध परम भाव ग्राहकेण चेतनस्वभावो जीवस्य ॥ १५९ ॥

जीव द्रव्यमें भव्यत्व मुक्त होने योग्य, अभव्य–मुक्त न होने योग्य, इस प्रकार दो प्रकार जीव राशि निसर्गतः सुनिश्चित होती है इसलिये इनको पारि-णामिक भाव कहा है।

तथा शुद्ध और अशुद्ध परमभाव ग्राहक नयसे जीव की भव्य राशि–अभव्य राशि स्वतः सिद्ध पारिणामिक स्वरुप सुनि-श्चित सिद्ध है। भव्य जीव कदापि अभव्य होता नही तथा अभव्य जीव कदापि भव्य होता नही। इसलिये मोक्षशास्त्रमें जीवत्व जैसा सबजीव द्रव्योंमें रहनेवाला पारिणामिभाव स्वतःसिद्ध है। उसी प्रकार भव्य-अभव्य जीव राशि भी सुनिश्चित स्वतःसिद्ध होनेके कारण जीव भव्य–अभव्यत्वानि च' इस सूत्रके द्वारा पारिणामिक भावके तीन भेद कहे गये है।

भव्यजीवोमें जीवत्व और भव्यत्व ये दो पारिणामिक भाव तथा अभावजीवों जीवत्व और अभव्यत्व ये दो पारिणामिक भाव रहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असद् भूत व्यवहारेण कर्म-नोकर्मणो रपि चेतन स्वभावः ॥ १६० ॥

असद्भूत व्यवहार नयसे कर्म-नोकर्मरुप पुद्गल द्रव्यका भी चेतन स्वभाव है। (समानशील व्यसनेषुसख्यं) इस नीतिसे जीवके सार्थ संबद्ध होकर जीवगुणका घात करनेका कार्य करते है इसलिये पुद्गल द्रव्यरुप कर्म-नोकर्म भी कथंचित् चेतन कहे जाते हैं। जीवके साथ संबंद्ध होनेके कारण कर्म-नोकर्म शरीर भी सचेतन कहा जाता है.

पौरुषेय परिणामानुरंजितत्वात् कर्मणः स्यात् चेतन्यं। (राजवार्तीक ५।२४) कर्म नोकर्म अचेतन पौद्गलिक होनेपर भी चेतन के साथ संश्लेषसंबंध होनेके कारण असद्भूत व्यवहार नयसे सचेतन कहे जाते है।

परमभाव ग्राहकेण कर्मनोकमणोरचेतन स्वभाव ॥ १६१ ॥

परमभाव ग्राहक नयसे कर्म-नोकर्म पुद्गल द्रव्यके पर्याय होनेसे अचेतन स्वभाव है।

जीवस्याप्यसद्भूत व्यवहारेण अचेतन स्वभाव ॥ १६२ ॥

असद्भूत व्यवहार नयसे जीव भी अचेतन स्वभाव है। कर्म-नोकर्मरुप पुद्गलका जीवके साथ संयोग होनेसे उपचार करके जीवको अचेतन कहने में आता है या व्यवहार किया जाता हैं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीप– (समानशील व्यसनेषुसख्यं) अचेतन कर्मके साथ संबंध रखनेके लिये चेतनको कथंचित् अचेतन होना पडता हैं ।

परमभाव ग्राहकेण कर्मनोकर्मणो मूर्त स्वभावः ।। १६३ ।।

परमभाव ग्राहक नयकी अपेक्षासे कर्म नोकर्म मूर्त स्वभाव है । (क्योंकि वे अपने परम भाव मूर्त द्रव्य पुद्गलके होनेसे परम भावसे मूर्त हैं)

जीवस्यापि असद्भूत व्यवहारेण मूर्त स्वभावः ।। १६४ ।।

असद्भूत व्यवहार नयसे जीव भी मूर्त स्वभाव है ।

परमभाव ग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त स्वभावः ।। १६५ ।।

परमभाव ग्राहक नय की अपेक्षा पुद्गल को छोडकर धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य अमूर्त स्वभाव है ।।

पुद्गलस्योपचारादपि नास्त्यमूर्तत्वम् ।। १६६ ।।

(किन्तु) पुद्गल उपचारसे भी अमूर्त स्वभाववाला नही है ।

परमभाव ग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेश–स्वभावत्वम् ।। १६७ ।।

परम भाव ग्राहक नय की अपेक्षासे कालाणु तथा पुद्गल का एक परमाणु एक प्रदेशी है ।। १६७ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेद कल्पना निरपेक्षेणेतरेषांचाखण्डत्वादेक प्रदेशस्वभावत्वम् ॥ १६८ ॥

भेद कल्पना की अपेक्षा करने पर धर्म अधर्म आकाश तथा चेतन द्रव्य भी अखण्ड होनेसे एक प्रदेशी हैं ॥

(किन्तु) भेद कल्पना सापेक्षेण चतुर्णामपि नाना प्रदेशस्वभावत्वम् ॥ १६९ ॥

भेद कल्पना की अपेक्षा करनें पर शेष धर्म, अधर्म, आकाश और चेतन ये चारों द्रव्य अनेक प्रदेशी है ॥ १६९ ॥

पुद्गलाणोरुपचारतो नाना प्रदेशत्वं, नच कालाणोः स्निग्धरूक्षत्वाभावात् ऋनुत्वाच्या ॥ १७० ॥

पुद्गलाणु उपचारसे नाना प्रदेशी (अनेक प्रदेशी) है। (क्योकि बद्ध वन्य अवस्था को प्राप्त होकर अन्य परमाणु से बद्ध होकर बहुप्रदेशी स्कन्ध रूप हो जाता हैं) किन्तु कालाणुमें बद्ध होकर गुण न होनेसे अन्य कालाणुओंके साथ वन्ध को प्राप्त नहीं होता हैं। इस कारण कालाणु उपचारसे भी बहुप्रदेशी नही है तथा कालाणु स्थिर हैं ॥ १७० ॥

अणोरमूर्तत्वाभावे पुद्गलस्यैकविंशतितमो भावो न स्यात् ॥ १७१ ॥

(यहां एक शंका होती है कि) यदि पुद्गल का परमाणु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपचारसे भी अमूर्तिक नही हैं अर्थात् उपचार से भी परमाणुको अमूर्तिक नहीं मानते हो तो पुद्गल में इक्कीसवां भाव अमूर्तिक नही रहेगा? (और पूर्व में सूत्र नं ३० तीस में कह आये हैं कि पुद्गल में इक्कीस स्वभाव होते है) यह एक प्रश्न है ॥ १७१ ॥

(समाधान)–परोक्ष – प्रमाणापेक्षया असद्भूत व्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्तत्वं पुद्गलस्य ॥ १७२ ॥

(उस पूर्व सूत्रमें की गई शंका समाधान यह है कि पुद्गल का परमाणु परोक्ष है अर्थात् इन्द्रियगोचर न होनेसे साम्व्यवहारिक प्रत्यक्षका विषय नहीं हैं इसलिये उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से उसमें अमूर्तिकपने का आरोप करके पुद्गलके इक्कीस भाव कहे गये है।

विशेषार्थ– स्वभाव अधिकार प्रकरण सूत्र क्र. ३० में पुद्गल के इक्कीस भाव बतला आये है। और यहां यह कहा कि पुद्गल का परमाणु उपचारसे भी अमूर्तिक नही है। इससे ही ऐसी शंका होना भी स्वभाविक है कि जीव और पुद्गल में बन्ध होनेसे जैसे आत्मा को मूर्तिक का उपचार करके मूर्तिक कहा जाता हैं वैसे हीं यहां भी पुद्गल को अमूर्तिक का उपचार करके पुद्लाणु को अमूर्तिक क्यों नहीं कहा जाता है क्योंकि वह अमूर्तिक आत्मासे बंध को प्राप्त है?

उसका समाधान यह है कि जहा पुद्गल का मूर्तित्वभाव अभिभूत (अप्रकट) नही हैं किन्तु उद्भूत (प्रकट) है वहा अमूर्तता स्वभाव संभव नही है, क्योंकि अमूर्तता पुद्गल द्रव्य से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न द्रव्योंका गुण (धर्म) है। आत्मासे बद्ध कर्मोंकी अमूर्तता अभिभूत (अप्रगट) नही हैं बल्कि कर्मोंके कारण आत्मा की अमूर्तता कथंचित् अभिभूत हैं इसलिये आत्मामें मूर्तता का उपचार किया जाता है किन्तु कर्मोंमें अमूर्तता का उपचार नहीं किया जाता। इस समाधानसे पुनः यह शंका होती हैं कि यदि उपचार से भी पुद्गल में अमूर्त स्वभाव नही है तो पहिले क्यों कहां गया कि जीव पुद्गल मे इक्कीस इक्कीस भाव होते हैं? तो इस शंका का समाधान यह हैं–कि पुद्गलका परमाणु परोक्ष है (इतना सुक्ष्म है) जैसे इन्द्रियोंसे स्कन्धका प्रत्यक्ष होता हैं वैसे परमाणुका नही होता है। अतः साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष को विषय न होनेसे परमाणुमें अमूर्तिकका उपचार करके पुद्गल द्रव्य में किसी अपेक्षा इक्कीस भाव कहे हैं ॥ १७२ ॥

शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिकेन विभाव स्वभावत्वम् ॥ १७३ ॥

शुद्धाशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा जीव और पुद्गल विभाव स्वभाव है।

विशेषार्थ– द्रव्यमें स्वयं एक ऐसी शक्ति हैं जिसके कारण वह पर का संयोग मिलनेपर स्वभाव रूपसे परिवर्तन कर विभाव रूप हो जाता हैं और यह शक्ति जीव और पुद्गल द्रव्य में ही है इसी कारण इस नयसे विभाव स्वभावपना कहा गया है ॥ १७३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध द्रव्यार्थिकेन शुद्ध स्वभावः ॥ १७४ ॥

शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे शुद्ध स्वभाव हैं ॥ १७४ ॥

अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे अशुद्ध स्वभाव है ॥१७५॥

अशुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे अशुद्ध स्वभाव है ॥ १७५ ॥

असद्भूत व्यवहारेणोपचरित स्वभावः ॥ १७६ ॥

असद्भूत व्यवहार नयसे उपचरित स्वभाव हैं ॥ १७६ ॥
इस प्रकार नय योजना समाप्त हुई ॥

अथ प्रमाण लक्षण ॥ १२ ॥

सकल वस्तु ग्राहकं प्रमाणम् । प्रमीयते परिच्छिद्यते वस्तुतत्त्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम् ॥ १७७ ॥

जो पूर्ण वस्तु को ग्रहण करता है वह प्रमाण हैं। जिसके द्वारा वस्तु तत्त्व को जाना जाता है उस को प्रमाण कहते है ॥ १७७ ॥

तत् द्वेधा सविकल्पेतरभेदात् ॥ १७८ ॥

वह दो प्रकार का हैं-एक सविकल्प दूसरा निर्विकल्प ॥१७८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सविकल्पं मानसम् । तच्चतुर्विधं–मतिश्रुतावधि मनःपर्ययरूपम् ॥ १७९ ॥

मन और इंद्रियों की सहायता से उत्पन्न हुये ज्ञान को सविकल्प प्रमाण कहते है। वह चार प्रकार का है–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान

विशेषार्थ– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान ये चार ज्ञान मानस अर्थात् सविकल्प (प्रमाण) हैं। मतिज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से जानता हैं। श्रुतज्ञान मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थो को विशेष जानता हैं। अवधिज्ञान द्रव्यक्षेत्र काल और भाव की मर्यादामे रुपी पदार्थोंको ज्ञानसे प्रत्यक्ष स्पष्ट जानता है और मनः पर्यय ज्ञान दूसरे के मन में तिष्ठते हुये रुपी पदार्थों या रुपी द्रव्य संबंधी विचारों को स्पष्ट जानता है इस प्रकार इन चारों ज्ञानों को जाननें में कुछ न कुछ विकल्प होने से चारों ज्ञान सविकल्प प्रमाण है ॥ १७९ ॥

निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानम् ॥ १८० ॥

जो ज्ञान इंद्रिय और मन की सहायता के बिना केवल आत्मा की ज्ञान शक्तीसे ही होता है या जानता है वह केवल ज्ञान है ॥ १८० ॥

इति प्रमाणस्य व्युत्पति । इस प्रकार प्रमाण की व्युत्पत्ति पूर्ण हुई ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नय के स्वरुप और भेद ॥ १३ ॥

प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थैकांशो नयः श्रुत विकल्पो वा ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः । नाना स्वभावेभ्यः व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीति वा नयः ॥ १८१ ॥

प्रमाणज्ञान के द्वारा गृहीत वस्तु के एक अंश को ग्रहण करने का नाम नय हैं ॥ अर्थात् प्रमाण से वस्तु के सब अंशों को ग्रहण करके ज्ञाता पुरुष अपने प्रयोजन के अनुसार उनमें से किसी एक धर्म की मुख्यता से कथन करता हैं वह नय है । इसी से ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहा है । श्रुतज्ञान के भेद नय है । इस तरह जो नाना स्वभावोंसे वस्तु को पृथक् करके एक स्वभाव में स्थापित करता है वह नय हैं ॥ १८१ ॥

स द्वेधा सविकल्प-निर्विकल्प भेदात् ॥ १८२ ॥

वह दो प्रकार का हैं-सविकल्प और निर्विकल्प । जो नय भेदरुप से वस्तु को ग्रहण करता हैं वह सविकल्प नय हैं और जो अभेद रुप से वस्तु को ग्रहण करता हैं वह निर्विकल्प नय है ॥ १८२ ॥

इति नयस्य व्युत्पत्तिः ।

इस प्रकार नय की व्युत्पत्ति की गई हैं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ निक्षेप व्युत्पत्तिः ॥ १४ ॥

प्रमाण नययोर्निक्षेपणं–आरोपणं निक्षेपः । स नाम-स्थापनादि भेदेन चतुर्विधः ॥ १८३ ॥

प्रमाण और नय के निक्षेपण को निक्षेप कहते हैं वह नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से चार प्रकार का है ॥

विशेषार्थ– निक्षेप का अर्थ है रखना । अर्थात् प्रयोजनवश नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव में पदार्थ के स्थापन करने को निक्षेप कहते हैं । गुण–जाति आदिकी अपेक्षा न करके विवक्षित नाम से संकेतित करना नाम निक्षेप है । जैसे–किसी दरिद्र ने अपने बेटे का नाम राजकुमार रखा हैं तो वह नाम से राजकुमार है ।

साकार और निराकार पदार्थ में वह यह हैं इस प्रकार की स्थापना करना स्थापना निक्षेप हैं । जैसे शतरंज के मोहरों में राजा आदि की स्थापना करना ।

नय भेदो की व्युत्पत्ति ॥ १५ ॥

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः ॥ १८४ ॥

द्रव्य ही जिसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक नय है ॥ १८४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्ध द्रव्यार्थिकः ॥ १८५ ॥

शुद्ध द्रव्य ही जिसका अर्थ प्रयोजन है वह शुद्ध द्रव्यार्थिक हैं ॥ १८५ ॥

अशुद्ध द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्ध द्रव्यार्थिकः ॥ १८६ ॥

अशुद्ध द्रव्य ही जिसका अर्थ-प्रयोजन है वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है । १८६ ॥

सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण द्रव्य द्रव्यमिति-व्यवस्थापयतीति अन्वय द्रव्यार्थिकः ॥ १८७ ॥

सामान्य गुण आदि का द्रव्य द्रव्य इस प्रकार अन्वयरुपसे बोध करता हैं वह अन्वय द्रव्यार्थिक है अर्थात् अविच्छिन्न रुप से चले आये गुणों के प्रवाह में जो द्रव्य का बोध करता हैं उसे ही द्रव्य मानता हैं वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है ॥ १८७ ॥

स्वद्रव्यादि ग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादि ग्राहकः ॥ १८८ ॥

स्वद्रव्य आदि ग्रहण करना जिसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन है वह स्वद्रव्यादि ग्राहक नय हैं ॥ १८८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परद्रव्यादि ग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परद्रव्यादि ग्राहकः ॥ १८९ ॥

जिसका प्रयोजन परद्रव्य आदि को ग्रहण करना है वह परद्रव्यादि ग्राहक नय है ॥ १८९ ॥

परमभाव ग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभाव ग्राहकः ॥ १९० ॥

जिसका प्रयोजन परम भाव को ही ग्रहण करना हैं वह परम भाव ग्राहक नय है ॥ १९० ॥

इति द्रव्यार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ।
इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की व्युत्पत्ति हुई ।

पर्यायार्थिक नयकी व्युत्पत्ति ॥ १६ ॥

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ॥ १९१ ॥

पर्याय ही जिसका अर्थ प्रयोजन हैं वह पर्यायार्थिक नय है ॥ १९१ ॥

अनादि नित्य पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यनादि नित्य पर्यायार्थिकः ॥ १९२ ॥

अनादि नित्य पर्याय ही जिसका अर्थ–प्रयोजन है वह अनादि नित्यपर्यायार्थिक नय हैं ॥ १९२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सादि नित्य पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादि नित्य पर्यायार्थिकः ॥ १९३ ॥

सादि नित्य पर्याय ही जिसका अर्थ–प्रयोजन हैं वह सादि नित्य पर्यायार्थिक नय है ॥ १९३ ॥

शुद्ध-पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्ध-पर्यायार्थिकः ॥ १९४ ॥

शुद्ध पर्याय हीं जिसका अर्थ प्रयोजन है वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय हैं ॥ १९४ ॥

अशुद्ध पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्ध पर्यायार्थिकः ॥ १९५ ॥

अशुद्ध पर्याय ही जिसका अर्थ–प्रयोजन है वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय हैं ॥ १९५ ॥

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः ।
इस प्रकार पर्यायार्थिक की व्युत्पत्ति है ।

नैकं गच्छतीति निगमः । निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः ॥ १९६ ॥

जो एक को नहीं (अनेक को) जाता है वह निगम कहलाता हैं । निगम का अर्थ है विकल्प उसमें जो हो वह नैगम कहलाता है अर्थात् जो वस्तु अभी निष्पन्न नहीं हुई है उसके संकल्प मात्र को जो ग्रहण करना है वह नैगम नय हैं ॥ १९६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभेदरुपतया वस्तु जातं संग्रहीतीति संग्रहः ॥ १९७ ॥

जो अभेद रुप से समस्त वस्तुओं का संग्रह करके ग्रहण करता है उसे संग्रह नय कहते है ॥ १९७ ॥

संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरुपतया वस्तु येन व्यवहियत इति व्यवहारः ॥ १९८ ॥

संग्रह नय के द्वारा गृहीत अर्थ का भेद रुप से व्यवहार करनेवाले नय को व्यवहार नय कहते है ॥ १९८ ॥

ऋजु प्राञ्जलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः ॥ १९९ ॥

जो सरल सीधा सूत्रपात करे अर्थात् वर्तमान पर्याय मात्र को जो ग्रहण करता हैं वह ऋजुसूत्र नय हैं ॥ १९९ ॥

शब्दात् व्याकरणात् प्रकृति प्रत्यय द्वारेण सिद्धः शब्दः शब्द नयः ॥ २०० ॥

शब्द अर्थात् व्याकरण से प्रकृति प्रत्यय के द्वारा सिद्ध शब्द को (ग्रहण करनेवाले नय को) शब्द नय कहते है ॥ २०० ॥

परस्परेणाभिरूढः समभिरूढः । शब्द भेदेऽप्यर्थ भेदोनास्ति यथा—शक्र इन्द्र पुरन्दर इत्यादयः समभिरूढः ॥ २०१ ॥

परस्पर में अभिरूढ को समभिरुढ कहते हैं, जैसे—शक्र, इन्द्र, पुरन्दर आदि शब्द इंद्र के वाचक हैं इनमे शब्द भेद होकर भी अर्थ भेद नहीं है । अथवा एक शब्द अनेक जर्थ वाचक होकर भी रूढ अर्थको ही ग्रहण करना यह समभिरु नय हैं । जैसे गो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शद्वे गाय, वाणी–इंद्रिय अर्थ होनेपर भी गाव अर्थको ग्रहण करना अतः ये तीनों शद्व इंद्र के ही रुढ अर्थ वाचक है।। २०१ ।।

एवं क्रियाप्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः ।। २०२ ।।

जो क्रिया की प्रधानता से वस्तु को ग्रहण करता है वह एवं भूत नय है ।। २०२ ।।

(इन नयों का सूत्र क्रं. नं. ६३ से ७९ तक पिछले प्रकरण में स्पष्टीकरण किया जा चुका है वहां देखना चाहिये)

शुद्धाशुद्ध-निश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।। २०३ ।।

शुदध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय द्रव्यार्थिक नय के ये दो भेद है ।। २०३ ।।

अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः ।। २०४ ।।

अभेद और अनुपचार रुप से वस्तु का कथन निश्चय करना निश्चय नय है ।। २०४ ।।

भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः।। २०५ ।।

भेद और उपचार रुप से वस्तु का कथन व्यवहार करना व्यवहार नय हैं ।

(निश्चयं नय से अभेद वस्तु का निश्चय किया जाता है और निश्चय नय द्वारा निश्चित वस्तु में भेद कथन व्यवहार कसा यह व्यवहार नय हैं) ।। २०५ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणगुणिनोः संज्ञादि भेदात्भेदकः सद्भूत व्यवहारः ।। २०६ ।।

गुण और गुणी में संज्ञा संख्या आदि से जो भेद करता है वह सद्भूत व्यवहार नय है ।। २०६ ।।

अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणा ऽसद्भूत व्यवहारः ।। २०७ ।।

अन्य प्रसिद्ध धर्म का अन्य में आरोप करने को असद्भूत व्यवहार नय कहते हैं ।। २०७ ।।

असद्भूत व्यवहारः, एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यःकरोति स उपचरितासद्भूत व्यवहारः ।। २०८ ।।

असद्भूत व्यवहार ही उपचार है । उपचार का भी जो उपचार करता है वह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय हैं ।।२०८।।

गुण गुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभाव स्वभाविनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः ।। २०९ ।।

गुण–गुणी में, पर्याय–पर्यायी में, स्वभाव–स्वभाववान् में, कारक कारकवान् में भेद करना अर्थात् वस्तुतः जो अभिन्न है उसमें भेद करना सद्भूत व्यवहार नय का अर्थ है ।। २०९ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये गुणोपचारः, द्रव्ये पर्यायोपचारः, गुणे द्रव्योपचारः गुणे पर्यायोपचारः, पर्याये द्रव्योपचारः पर्याये गुणोपचारः इति. नवविधोऽसद्भूत व्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ॥ २१० ॥

द्रव्य में द्रव्य का उपचार, पर्याय में पर्याय का उपचार, गुण में गुण का उपचार, द्रव्य में गुण का उपचार, द्रव्य में पर्याय का उपचार, गुण में द्रव्य का उपचार, गुण में पर्याय का उपचार, पर्याय में द्रव्यका उपचार, पर्याय में गुण का उपचार इस प्रकार असद्भूत व्यवहार नय का अर्थ नौ प्रकार से जानना चाहिये ॥ २१० ॥

उपचारः पृथक् नयो नास्तीतिन पृथक् कृतः । मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते । सोऽपि सम्बन्धाविनाभावः, संश्लेष्म संबंध, परिणाम परिणामि संबंधः, श्रद्धाश्रद्धेय संबंधः, ज्ञानज्ञेय संबंधः, चारित्र चर्या संबंध इत्येत्यादिः सत्यार्थः, असत्यार्थः सत्यासत्यार्थ-इत्येत्युपचरिता सद्भूतं व्यवहार नयस्यार्थः ॥ २११ ॥

उपचार नाम का कोई नय नहीं है इसलिये उसे अलग से नहीं कहा है । मुख्य के अभाव में प्रयोजन तथा निमित्त के होने पर उपचार किया जाता हैं । यह उपचार भी अविनाभाव संबंध, संश्लेष्म संबंध, श्रद्धाश्रद्धेय संबंध, ज्ञानज्ञेय संबंध, चारित्र चर्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंध, इत्यादि संबंधों को लेकर होता है इस तरह उपचरित असभ्दूत व्यवहार नय का अर्थ सत्यार्थ,असत्यार्थ और सत्यासत्यार्थ होता है।

विशेषार्थ– यहां यह बतलाया है कि उपचार नाम का कोई नय नहीं है क्योंकि पहिले कह आये है कि "भेद और उपचार रुप से वस्तु का व्यवहार करना व्यवहार नय हैं" एतावता इस कथन से यह बात स्पष्ट हो गई कि उपचार नय के ही अंतर्गत हैं। उपचार अनेक सबंधों को लेकर के होता है– अविनाभाव सबंध कहते है– जो जिसके बिना न हो जैसे रागादिक का द्रव्यकर्मों के बंध होने में अविनाभाव संबंध हैं बिना रागादिक के कर्म बंध होता ही नही है। संश्लेष संबंध दो द्रव्योंके दूध पानी की तरह एक मेक होकर मिलने को संश्लेष संबंध कहते हैं जैसे जीव के प्रदेश और कार्माणस्कंध इन दोनोंका संश्लेष संबंध है। परिणाम परिणामि संबंध-द्रव्य और पर्याय में होता हैं. जैसा आत्मा परिणामी है रागादिक उसकी पर्याय परिणाम है इन दोनों का सबंध परिणाम परिणामी संबंध है। श्रद्धाश्रद्धेय संबंध दो द्रव्यों में या एक द्रव्य में भी होता है– जैसे आदि सात तत्त्व श्रद्धेय है आत्माके दर्शन गुण के माध्यम से जो श्रद्धा होगी वह श्रद्धा है। इस प्रकार श्रद्धा और श्रद्धा करने योग्य देव शास्त्र गुरु या सात तत्त्वों आदि में श्रद्धा श्रद्धेय सबंध होता है। जो जानता है वह ज्ञान हैं जिन पदार्थों को जानता है वे ज्ञेय है (ज्ञान के विषय है) जैसे मतिश्रुत आदि पांच ज्ञान हैं जीवादि छह द्रव्य और नौ पदार्थ व सात तत्त्व ज्ञेय स्वपर पदार्थ है–इन दोनों का ज्ञान ज्ञेय संबंध है। श्रावक बारह व्रत तथा साधु के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अठ्ठाईस मूल गुण चारित्र हैं–इनका यथावत् सम्यक् प्रकार पालन करना चर्या हैं– इस प्रकार चारित्र और चर्यासंबंध कहा जाता है।

ये संबंध सत्यार्थ भी है। असत्यार्थ भी और सत्यासत्यार्थ उभयरुप भी है– जैसे शरीर आत्मा का संश्लेषम संबंध हैं वह वस्तुओंके संयोग की अपेक्षा देखे जाने पर सत्य है किंतु पृथक पृथक जीव और कर्म (पुद्गलरचित) दो द्रव्यों के द्रव्य क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा देखा जावे असत्यार्थ हैं। क्योंकि दोनों मिले हुये होने पर भी दोनों के द्रव्यक्षेत्रादि पृथक पृथक है। साथ में मिले हुये होने पर भी कभी मिलकर एक नहीं हो जाते हैं इस प्रकार असत्यार्थ हैं। तथा एक साथ व्यवहार से मिले हुये तथा परमार्थ से पृथक् पृथक् देखने पर सत्यासत्यार्थ होते हैं॥ २११॥

इस प्रकार आगम पद्धतिसे नयों की व्युत्पत्ति की गई।

अध्यात्मनय ॥ १७ ॥

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते ॥ २१२ ॥

फिर भी अध्यात्म भाषा के द्वारा नयों का कथन करते हैं॥ २१२॥

तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च ॥ २१३ ॥

(प्रथम ही) मूल नय दो हैं– निश्चय और व्यवहार॥ २१३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र निश्चयनयोऽभेद विषयोऽ व्यवहारो भेद विषयः ॥ २१४ ॥

उनमें निश्चय नय अभेद को विषय करता है और व्यवहार नय भेद को विषय करता हैं ॥ २१४ ॥

तत्र निश्चयो द्विविधः, शुद्ध निश्चयोऽशुद्ध निश्चयश्च ॥ २१५ ॥

उनमें से निश्चय नय के दो भेद है- शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चयनय ॥ २१५ ॥

तत्र निरुपाधिक गुणगुण्यभेद विषयकः शुद्ध निश्चयो यथा-केवल ज्ञानादयो जीव इति ॥ २१६ ॥

उनमें जो उपाधि रहित गुण और गुणी में अभेद को विषय करता है वह शुद्ध निश्चय नय हैं। जैसे कवळ ज्ञान आदि जीव है ॥ २१६ ॥

सोपाधिक गुण गुण्य भेद विषयोऽशुद्धनिश्चयो, यथा मतिज्ञाना दयो जीव इति ॥ ११७ ॥

उपाधि सहित गुण और गुणी में अभेद को विषय करने वाला अशुद्ध निश्चय नय है। जैसे मतिज्ञान आदि जीव है ॥ २१७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहारो द्विविधः सद्भूत व्यवहारोऽसद्भूत व्यवहारश्च ॥ २१८ ॥

व्यवहार नय के दो भेद हैं– सद्भूत व्यवहार नय और असद्–भूत व्यवहार नय ॥ २१८ ॥

तत्रैक वस्तु विषयः सद्भूत व्यवहार, भिन्नवस्तु विषयोऽसद्भूत व्यवहारः ॥ २१९ ॥

उनमें एक ही वस्तुमें भेद व्यवहार करने वाला सद्भूत व्यवहार नय है और भिन्न वस्तुओं में अभेद व्यवहार करनेवाला असद्भूत व्यवहार नय है ॥ २१९ ॥

तत्र सद्भूत व्यवहारोऽपि द्विविध उपचरितानुपचरित भेदात् ॥ २२० ॥

उनमें से सद्भूत व्यवहार नय के भी दो भेद हैं–उपचरित सद्भूत व्यवहार नय और अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय ॥ २२० ॥

तत्र सोपाधि गुणगुणि भेद विषय उपचरित सद्भूत व्यवहारो यथा जीवस्य मति ज्ञानादयो गुणाः ॥ २२१ ॥

उपाधि सहित गुण गुणी में भेद व्यवहार करने वाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है, जैसे जीव के मति ज्ञानादि सोपाधि गुण है ॥ २२१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरूपाधि गुण गुणि भेद विषयोऽनुपचरित सद्भूत व्यवहारो यथा–जीवस्य केवलज्ञानदयो गुणाः ॥ २२२ ॥

निरुपाधि गुण-गुणी में भेद व्यवहार को विषय करने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है जैसे–जीव के केवल ज्ञानादि गुण हैं ॥ २२२ ॥

असद्भूत व्यवहारो द्विविध : उपचरितानुपचरित भेदात् ॥ २२३ ॥

असद्भूत व्यवहार दो प्रकार का हैं– उपचरित असद्भूत व्यवहार नय और अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय ॥ २२३ ॥

तत्र संश्लेष रहित वस्तु सम्बन्ध विषय उपचरितासद्भूत व्यवहारो, यथा देवदत्तस्य धनमिति ॥ २२४ ॥

मेल रहित वस्तुओं मे संबंध को विषय करनेवाला उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे देवदत्त का धन ॥ २२४ ॥

संश्लेषसहित वस्तु संबंध विषयोऽनुपचरिता सद्भूत व्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति ॥ २२५ ॥

तथा मेल सहित वस्तुओंमें संबंध को विषय करनेवाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय हैं। जैसे– जीव का शरीर ॥ २२५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार अध्यात्म नयों का विवेचन समाप्त हुआ

इति सुखबोधनार्थमालापपद्धति श्री देवसेनाचार्येण
विरचिता परिसमाप्ता ॥

इस प्रकार सुखपूर्वक बोध कराने के लिये आचार्य देवसेन विरचित आलापपद्धति समाप्त हुई ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

– ग्रंथकर्ता परिचय –

आलापपद्धतिके अंतमे 'इति सुखबोधार्थं मालापपद्धतिः श्रीमद्देवसेनविरचिता परिसमाप्ता" इस प्रकारका पाठ है। इससे यह ग्रंथ देवसेनसूरि-कृत है यह निश्चित हो जाता है। तथा ग्रंथके आदिमें "आलापपद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नय चक्रस्योपरि उच्यते।" ऐसा पाठ है इससे भी प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ स्वयं देवसेनसूरिने बनाया है। यद्यपि आलापपद्धतिमे केवल नयोंका ही वर्णन नही है किंतु गुण, स्वभाव, पर्याय, प्रमाण और निक्षेपादिका भी वर्णन है तो भी नयचक्रमे जिस प्रकार नयोंका वर्णन है ठीक उन्होंका प्रति-बिम्बरुप आलापपद्धतिका नयवर्णन प्रकरण समझना चाहिऐ यही एक ऐसा प्रमाण है कि जिससे नयचक्र और आलापपद्धतिके देवसेनसूरिमें कुछभी अंतर नही रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org